सिद्धि
स्वरूप
वैभव
श्रीमद् रामहर्षण दासजी महाराज

उत्पन्न हो जाती है स्मर के स्मर का स्मरण कर। कभी-कभी श्री किशोरीजू को अपने भैया के अंक में आसीन देखती और कभी-कभी श्याम सुन्दर को अपने श्याल के उत्संग में अवलोकन करती। अहा ! उनके उत्फुल्ल-मुख का दर्शन कर-करके कृतकृत्य हो जाती थी, पश्चात् परमानन्द का अनुभव करती हुई, आरती उतार कर मंगलानुशासन करती थी। हाय ! ये नयन अब कब उस रूप माधुरी के पेय का पान कर अपनी तृषा को शांत करेंगे। हा श्याम सुन्दर ! हा श्याम !! हे राम ! हे सीते !

[कहकर श्री सिद्धिजी विरह वेदना से स्मृति-हीन हो जाती हैं।]

चित्राजी : (सचेत करके) विरह दीप्तिते ! राज किशोर एवं राजकिशोरी जू का दर्शन-स्पर्शन अत्यन्त आह्लाद-प्रदायक है। क्योंकि वे युगल-मूर्तियाँ आनन्द की असीम अम्भोधि हैं, उनके सुख-स्वरूप के सुख-सिन्धु के सीकरांश से सम्पूर्ण-संसार सुखी रहता है। जब चराचर-प्राणियों को दोनों प्राण से प्रिय प्रतीत होते हैं तब आप जैसी प्रेम-प्रतिमा को परम-प्रिय लगे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? जैसे आप अपने ननँद-ननदोई के वियोग में व्याकुलेक्षणा एवं विह्वलाङ्गी बनी हुई हैं। इसी प्रकार वे भी आपकी आन्तरिक-आहत अभिव्यक्ति को अपने चित्ताकाश में व्यक्त करके, अपनी भाभी व सरहज के विरह से विह्वल तथा ताप से संतप्त होंगे। अब सूर्य भगवान के अस्ताचल चले जाने से अपने आप रात्रि के प्रवेश काल में अन्धकार का आगमन हो गया है। शीत के सम्प्रवेग का भी समय है अतएव आप श्री को भीतर भवन में पधारकर, हम सब सखियों से की हुई, युगल-चरित्र सुनाने की सुश्रूषा को स्वीकार करना चाहिये।

श्री सिद्धिजी : अच्छा सहेली ! चलो, चलें। प्रियतम के बिना भीतर बाहर दिन-रात सभी तो अन्धकारमय हो रहे हैं फिर भी अपने आराध्यदेव की आराधना के लिये, अपनी ओर से उनके शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को स्वस्थ रखने की चेष्टा करते रहना चाहिये, स्मृति रहे तो...।

[दोनों प्रस्थान करती हैं ससमाज।]

पटाक्षेप

एक चत्वारिंशः दृश्यः ४१

[श्री सिद्धिजी श्री सीतारामजी की विरह-वेदना से व्यथित खोई-खोई सी अश्रु-विमोचन करती हुई, आँगन में बैठी हैं। हा श्याम सुन्दर ! हा श्यामे ! कह-कहकर उसासें भर रही हैं, जब तब चीख उठती हैं। सामने अपने ही भवन की छत पर, एक हंस को बैठे हुये देखकर बातें करने लगती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (गद्‌गद् वाणी में) ऐ हंस ! तुम तो बड़े विवेकी हो। शुक्ल-पक्षों से तुम्हारा शरीर सुशोभित है। परमार्थ करने में भी बड़े ही कुशल हो, अतएव तुम अयोध्या जाकर श्याम सुन्दर रघुनन्दन को हमारा संदेश श्रवण कराकर पुनः हमारे समीप लौट् आओ और उनका समाचार इस विरहिनी-अबला को देकर, विरह-वह्नि की ज्वाला को कम कर दो। हमारे ननदोई से कहना कि, "हे शरणागत वत्सल ! आपको सर्वात्म-समर्पण करके

एक आपके सतत चिन्तन की चिता में बैठी हुई, सती–साध्वी की भाँति आप ही को सर्वस्व समझने वाली, आपकी सरहज सिद्धि कुँअरि योगिनी होकर, आपके बिना वियोगिनी बनी हुई है। अस्तु, हे राजिव लोचनराम ! आप अपना दर्शन–दान देकर मृत्यु–मुख में पड़ी हुई, उस अधीर अबला को मरने से बचाइये। जीवन–दान देकर उसे अपने प्रिय–कैंकर्य में नियुक्त कीजिये अन्यथा उसका अस्तित्व विनष्ट हो जाने पर आप श्री को अविराम अश्रुपात करते–करते ही कालक्षेप करना पड़ेगा। हे करुणा वरुणालय ! अपने "कृपासिन्धु" "प्रणतपाल" "जन–हितकारी" "दीन–बन्धु" इत्यादि नामों की सार्थकता की संरक्षा करने का सुअवसर आपको संप्राप्त है। अतः समय का सम्मान करते हुये, विरद को जीवित रखने के लिये मिथिला पधारें और तमावृत–सिद्धि–सदन को संप्रकाशित करें। वारि अभाव में मछली की तरह तड़पती हुई, सिद्धि कुँअरि आपकी स्मृति रूपी किंचित–जल–सिंचन से ही जीवित बनी हुई है। पक्षिकुल–भूषण ! कौशल्यानन्द–वर्धन श्रीरामजी को मेरा संदेश श्रवण कराकर अन्तःपुर चले जाना, समय पाकर वहाँ मेरी प्राण –प्रियतमा सीता नाम्नी ननँद से मेरी, इस दयनीय–दशा का दृश्य अपनी वाक्पटुता के द्वारा उपस्थित कर देना और मेरा प्रणाम कहकर कहना कि आपकी भाभी आपके वियोगाब्धि के आवर्त मे पड़कर अत्यन्त पीड़ा का अनुभव कर रही है। अतएव हे कृपा–विग्रहे ! अपनी कृपा के कणांश से उसका समुद्धार करें, जिससे वह चिन्मय–जीवन एंव चिरशान्ति को प्राप्तकर सरसता का समनुभव करे।हंस–वंश–अवतंस–दश स्यन्दन महीप के कुमार, अवनि कुमारी के साथ शीघ्र मेरे चर्मचक्षुओं के विषय बनकर चरमसुख की समनुभूति, जिस प्रकार से करा सकें, हंस–राज को उसी प्रकार की वाग्विसर्गता का अवलम्बन लेकर उनसे बातचीत करनी चाहिये। मेरी विकलता की स्मृति से प्रेम–मार्ग के विशेषज्ञ, प्रेम–पन्थ की अन्ध–पथिका का समुद्धार अपना करावलम्बन देकर अवश्यमेव करेंगे ऐसी अपनी परम प्रतीति है। पक्षिकुल विभूषण ! विरहिनी की व्यथा–वह्नि से प्रदीप्त–चित्त होकर, सम्प्रवेगता के साथ प्रस्थान कर सरयू–पुलिन पर प्रतिष्ठित–पुरी अपराजिता अयोध्या के अधीश्वर श्री दशरथजी महाराज के कुमार श्याम सुन्दर सीतारमण से हमारी प्रार्थना सुनाकर जब लौटोगे, तब कृतज्ञता प्रकट करती हुई, मैं तुम्हारी पूजा करूँगी। अच्छा ! अब जाओ, शीघ्र जाओ, तुम्हारा मंगल हो।"

[स्वभावतः पक्षी के उड़ जाने पर, एक कीर को देखकर श्री सिद्धि कुँअरिजी वाणी का विसर्ग करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्रेम में भरकर) कीर ! तुम तो मुझे भाग्य–वैभव के कुबेर प्रतीत हो रहे हो। अहो ! तुम्हारी लाल–लाल नासिका कितनी लुभावनी मालूम पड़ रही है। लगता है मन–मोहन कौशिल्या–नन्द–वर्धन रामजी की नासिका की आभा का अंश तुम्हारे तुण्ड में उतर आया है क्या ? इतना ही नहीं, तुम्हारे हरित–हरित पंख भी यह प्रत्यक्ष और निर्विवाद सिद्ध कर रहे हैं कि श्याम सुन्दर के शरीर की आंशिक श्यामता ने कान्ति–युक्त–हरीतिमा के रूप में, तुम्हारे तन की सुन्दरता का सम्प्रवर्धन किया है। इत्यादि कारणों से मुझे महा विश्वास हो रहा है कि तुम अवश्यमेव अवनीश कुमार को पहचानते होगे। अतएव, हे भैया शुक ! इस परमार्ता की आर्त–पुकार को आर्ति–विनाशन के श्रवणों तक पहुँचाने के लिये, तुम पावन–पुरी अयोध्या चले जाओ। वहाँ नागरिकों के नयनोत्सव लोक–लोचनाभिराम राजिव लोचन–राम अयोध्या की बीथियों में, राशि–राशि सौन्दर्य बिखेरते हुये, विहार करते तुम्हारे दृष्टि–पथ के पथिक अवश्य बन जायेंगे। तुम रघुनन्दन

के सहज सौन्दर्य–सुधा का पान करके अनिर्वचनीय आनन्द में डूब जाओगे किन्तु वाग्देवी के सहाय्य को प्राप्त कर, मुझ विरहिणी की विरहवेदना, वेद–वेद्य, प्रेम–विद्या पारंगत, प्रेम–पुरी के अधीश्वर, प्रेम–पीठ–स्थित, प्रेम–मूर्ति हमारे ननदोई को श्रवण कराना न भूलना, कहना कि चिदात्मा से वियुक्त होने पर प्रकृति की, विज्ञान स्वरूप परमात्मा से विच्छिन्न होने पर जीव की और जल से पृथक कर देने पर मीन की जो दशा होती है, वही दशा आपके बिना दर्शन के आपकी सरहज सिद्धि कुँअरि को संप्राप्त है अतएव कृपा–वारिधर को कृपा की विन्दु वर्षाकर, विदेह–वधू के जीवन की संरक्षा करनी चाहिये। समय का अतिक्रमण करने से मुरझाई हुई, सिद्धि–शालि के सूखने में किंचित विलम्ब न होगा। शुष्क हो जाने पर वह कृषक के उपयोग में न आने से कृषक के हार्दिक व्यथा का विषय बनेगी । प्यारे शुक ! अन्तःपुर की मनोरम–वाटिका में विहरती हुई श्री मन्मैथिलीजू का दर्शन यदि तुम्हें सुलभ हो सके तो उनसे भी मेरी आत्मा की आर्त–नाद सुनाने में संकोच न करना। कहना कि, "आपकी भाभी आपके वियोग से विचार शून्य तथा किंकर्तव्यविमूढ़ बनी हुई, व्याकुलता की कटीली–झाड़ियों के गह्वर–वन में भ्रमण करती रहती हैं। आपका पदार्पण अयोध्या हो जाने पर मिथिला में उसे सर्व–दिशायें अंधकार से आवृत प्रतीत होती हैं वह आकिंचनत्व, अनन्य गतित्व और आर्तित्व को अपनाकर आप श्री के सुमधुर नाम "सीता–सीता" का अनवरत उच्चारण किया करती हैं। आपके चारु–चरित्रों का चिन्तन उसे विरहाग्नि में भस्मीभूत नहीं होने देता । आपके मिलन की आशा–सुधा कुम्हलाई हुई, सिद्धि–लता को सर्वथा सूखने नहीं देती। आप श्री के सम्प्रयोग का सुअवसर ही आपकी भाभी को अमृतत्व प्रदानकर अभय और अमृत के अक्षयासन में प्रतिष्ठित करने वाला है अतः आप अपने कृपा–विग्रह का स्मरण कर अपनी भाभी के भाव–साम्राज्य का सम्पूर्णतया समर्पण स्वीकार करें और उन्हें अपनी सेविका समझ निजी कैंकर्य में नियुक्त करने का स्वर्णिम–समय प्रदान करें। विलम्ब की बेला आपकी भ्रातृ–वधू को धराधाम में रखकर धरणि सुता को हृदयालिंगन देगी, इसमें सर्वथा सन्देह है।" हा...... सीते ! हा..... श्यामे !

[विरहाकुल श्री सिद्धिजी अश्रु प्रवाह करने लगती हैं। खोई सी हो जाती हैं। पुनः: कोकिल की सुमधुरिम कुहू कुहू की ध्वनि श्रवण करके, अपने आप कहने लगती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) अप्रतिम–कंठ की कोमलता के आकार अवनीश–कुमार श्री रामभद्रजू की अमृतमयी वाणी स्मरण कराते हुये, रे भाई काले कोकिल ! तुम क्यों पंचम स्वर में कुहू–कुहू का मीठा–मीठा राग अलाप रहे हो ? क्या तुम यह ज्ञान नहीं रखते कि इससे इस विरहिणी की विरह–वेदना का वार्धक्य वृद्धिगत होता हुआ, इसे अधीरता के गहरे–गर्त में गिराये बिना न छोड़ेगा ? यदि तुम ने अपने मधुरतम–वाणी–विलास के द्वारा श्याम–सुन्दर की स्मृति को मेरे हृदय में अत्यधिक उत्पन्न कर, विरहोद्दीपन के दीप से मुझे उद्दीप्त करने का साहस ही कियाहै तो साधु–स्वभाव को स्वीकार करके, दुःख–ताप से संतप्त मुझ जैसी दुखिया के दुख को दूर करने का उपाय भी तुम जैसे मधुरभाषी को करना चाहिये। भैया पिक ! तुम सरयू किनारे पर संस्थित–साकेत–नगर चले जाओ, वहाँ पहुँचकर, प्रमोद बन–बिहारी का दर्शन कर दिव्यातिदिव्य चरम–सुख को संप्राप्त करना और उनसे कहना कि करुणावरुणालय की कृपा–सुधा से संपोषित, सिद्धि कुँअरि

आपके दर्शनानन्द के अभाव से सूखकर कृश-काय हो गई हैं। आप श्री के दर्शन स्पर्शन की आशा ही उसे अब तक जीवित बनाये हुये है अन्यथा उसके जीवन की ज्योति बुझ गई होती। आपके नाम, रूप, लीला और धाम का स्मरण उसे प्रकृतिस्थ नहीं रहने देता। निमिकुल-वधू नित्य अपने नयनों के नीर से नीरज-नयन का तर्पण किया करती है, अनवरत आह की अग्नि में अहं की अरणी देकर, सहज स्नेह के घृत की आहुति देते रहना, उसका स्वभाव बन गया है। इस प्रकार प्रेम-यज्ञ के द्वारा प्रेमास्पद अपने ननँद-ननदोई के दर्शन की तीव्रतम-लालसा लेकर जगत में जी रही है। उसका जीना भी जानकी -जीवन के लिये ही है क्यों कि पित्रालय में अविवाहिता निवास करती हुई, आपकी सरहज को स्वप्नावस्था में श्री किशोरी जी सहित आप श्री की झलक मिलते ही स्व के सहित स्व-सुख का संसार सर्व-भावेन समाप्त हो चुका था अतः अपनी चरणाश्रिता के नयन-पथ में विचरने के लिये, आश्रितजन-रक्षक-रघुनन्दन को मिथिलापुरी अविलम्ब पधारनो चाहिये ताकि आपको अति-प्रिय प्रतीत होने वाली श्याल-वधू का कोमल-पौधा, विरह-वायु के झकोरों से उखड़कर उड़ न जाए। एकान्त पाकर मिथिलेश-राजनन्दिनीजू से भी मेरी दयनीय दुर्दशा का वर्णन करके, उन दयालुनी के चित्त को द्रवित करना जिससे उनके पुरुषकार से कृपासिन्धु की बिन्दु युगल-किशोर का दिव्य-दर्शन सिद्धि-सदन में करा सके। (स्वगत) हाय ! क्या सचमुच शीघ्रता के साथ, यह कोकिल-शकुन मेरे प्रियतम श्याम सुन्दर को मेरे समीप बुला लायेगा ? हाय ! कब मेरे प्राण के प्राण आयेंगे ? प्राणों की छटपटाहट तो इतनी अधीर बना रही है, लगता है कि प्राण-प्रियतम के लोभी-प्राण आतुरतावश, अभी-अभी शरीर से उत्क्रमण कर, आत्मा के साथ प्रमोद-विपिन-बिहारी के पास पहुँच जायेंगे। हाय ! इन लालची-लोचनों को ललचाते ही अपनी आकृति एवं तेज की परिसमाप्ति कर देनी होगी क्या ? हा ! रघुनन्दन ! हा ! जनकात्मजे ! हा ! श्यामसुन्दर! हा ! श्यामे !

[विलाप करती हुई, बिलखते-रोते सिद्धि कुँअरि मूर्छित हो जाती हैं, चित्रा उसी समय आकर अपनी स्वामिनी को सचेत करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (विलाप करती हुई, पद के द्वारा अपने मनोभावों को प्रकट करती हैं।)

पद : पपिहा पिया-पिया क्यों बोलै।
सुनतहिं सिय-पिय विरह वेदना, बाढ़ति उरहिं अतोलै ।
जो पै बोले बिना न रहि सक, तो योगिनि ढिंग डोलै ।
विरह वह्नि ते जरी देह महँ, हाय नमक जनि घोलै ।
हर्षण विलपति सिद्धि कुँअरि हा, विरह छुरी हिय छोलै ।

चित्रे ! देखो न यह पपीहा पिया-पिया की रट लगाकर, वैदेही-वल्लभ के विरह जन्य वेदना को मेरे हृदय में अधिक-अधिक प्रवर्धित कर रहा है। हाय ! क्या करूँ ? सारा दृश्य-जगत मेरे हृदय की विरह-वह्नि को बढ़ाने के लिए ऐष्ट-ईंधन का कार्य कर रहा है। हाय ! कहीं दूरस्थ-देश में जाकर भी परित्राण अप्राप्त ही रहेगा। कष्ट ! महाकष्ट !! हाय ! यह चातक मेरे चितचोर के समीप जाकर, मेरी संवेदना का समाचार सीता के समक्ष, सीताकान्त को श्रवण करा दे तो निश्चय है कि मेरे अन्तर की जानने वाले ननँद-ननदोई, सिद्धि-सदन में शीघ्र मुझे दर्शन देने के लिये, अबाध-गति से अविलम्ब

मिथिला पहुँचेंगे क्योंकि महा–महिमामयी सम्पूर्ण शुभ–लक्षणों से सम्पन्न श्री मन्मैथिलीजू की कृपा से जिस जीव का जानकी–जीवन के साथ सम्बन्ध हो जाता है, उसके किंचित क्लेश को करुणावरुणालय सहने में सक्षम नहीं हो सकते। मुझे यह विश्वास है कि मेरी दयनीय–दशा का संवाद अब तक किसी ने मेरे युगल–किशोर के श्रवणों तक नहीं पहुँचाया अन्यथा मिथिला पदार्पण किये उन्हें बहुत दिन हो गये होते। चित्रे तुम इस विरही–पक्षी को कौशल–किशोर के समीप समझा–बुझाकर भेज दो क्योंकि विरही की गति को विरही ही समझता है। एक एकाङ्गी–प्रेमी मेरे प्रियतम से सचमुच वही कहेगा जो प्रेमी पर प्रियतम के बिना बीतती है। हाय ! हृदय को कोई कुरेद–सा रहा है, चित्त को चिन्तामणि की चिन्ता क अतिरिक्त कोई कार्य शेष नहीं रहा । हाय ! मन तो मन मोहन क समीप ही है और बुद्धि का भी विलय हो गया है अतएव इस पार्थिव–शरीर का शैथिल्य सहज ही अल्प समय में शरीर को सबसे वियुक्त कर देगा। हाय ! हाय !!

[हाय ! हाय ! कहकर अचेत हो जाती हैं। चित्राजी उपचार कर प्रकृतिस्थ करती हैं।]

चित्राजी : (साश्रु) राम–प्रिये ! आपका प्रतिभोत्पन्न विवेकज–ज्ञान प्रेमार्णव में प्रबुद्धता की प्रक्रिया के सहित प्रविष्ट हो गया है इसलिये आप श्री प्रेमातिरेक के अतिरिक्त अन्य को न श्रवण करती हैं, न देखती हैं और न जानती हैं। भाव–साम्राज्य की साम्राज्ञी के मुख से स्वतः बिना स्वयत्न के भाव से भावित प्रेम पूर्ण–रसमयी–वार्ताओं का विस्तीर्ण–विकास हो रहा है जिससे समीपस्थ सभी परिचारिकाओं का चित्त–प्रदेश रसलुप्त होकर, आपका अनुगमन करने लगा है। एक मैं ही कुलिश–कठोर–हृदयाशेष हूँ जो अंग रक्षिका के सम्बन्ध से, आपको प्रसन्न–मना बनाने का प्रयत्न कर रही हूँ, यद्यपि यह मेरा साधन स्वतन्त्र नहीं है, आपके आराध्यदेव की इच्छा एवं कृपा से है अतएव उनके अधीन है अन्यथा आपके अंग–स्पर्श से दासी भी आपकी गति में गति और स्वर में स्वर मिलाकर एक मन और एक तन हो जाती, कई बार स्वयं का ऐसा अनुभव है। स्वामिनीजू ! शीतल–मंद सुगन्ध–समीर आपके शरीर का स्पर्शकर आपको प्रकृतिस्थ करता हुआ, हमसे वार्तालाप करने के लिये बाध्य कर दे, ऐसी कामना करती हूँ ।

[वायुमुख बैठाकर, सिद्धिजी के मुख को जल से चित्राजी धो देती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) चित्रे !सभी मनीषियों का समवेत–समर्थन है कि आन्तरिक–चेतना के प्रबुद्ध होने के साथ शरीर में भी परिवर्तन होने लगता है इसलिये जब मेरी चेतना–शक्ति ही अस्वस्थ है तो शरीर में स्वास्थ्य का संचार कैसे हो ? सहेली! क्या करूँ ? न जाने कौन–सी दशा मेरे माथे पर आ पड़ी है। अहो ! प्रतीची–दिशा से संप्रवाहित–वायु, मेरे वपु का स्पर्श करके आज अत्यन्त सुख की ओर मुझे लिये जा रहा है। क्यों ? समझ गई, अहा ! यह सुख–स्पर्शी–शीतल–मंद्र–सुगन्ध–समीर मेरे ननँद–ननदोई का स्पर्श करके आ रहा है अतएव अत्यन्तानन्द प्रदायक सिद्ध हो रहा है, पवनदेव ! आप नित्य लोकोत्तर–गुण वाले–सौन्दर्यसार–सीताकान्तजू का स्पर्श करके, मेरे तन का स्पर्श कर लिया करें ताकि मेरा संतप्त हृदय शीतलता का अनुभव किया करे । मैं कृतज्ञता प्रकट करती हुई, तुम्हें प्रणाम करती हूँ । हाँ, एक प्रार्थना के लिये आप अवश्यमेव अपने हृदय में स्थान देंगे, वह यह है कि मिथिला की ओर से अयोध्या की ओर भूलकर भी न बहियेगा, अन्यथा उरालय की भट्ठी में जलती हुई,

विरह-वह्नि से प्रदीप्त, मेरे शरीर का स्पर्श करने वाला वायु, युगल-किशोर के कमल-कोमल-सुमन-सुकुमार श्याम-गौर-वपु की कमनीय-कान्ति को झुलसाकर न्यून कर देगा। हाय ! मैं उनके वियोग की अग्नि में जलती-भुनती रहूँ, यह मुझे सह्य है किन्तु इसके विपरीत मेरे विरह की ताप उन्हें किंचित अंश में भी तप्त करे तो श्यामसुन्दर की सरहज असहिष्णुता का ही अवलोकन करेगी। सहेली ! पश्चिम दिशा मुझे अत्यन्त प्रिय है क्योंकि मेरे प्रियतम रघुनन्दन की नगरी को उक्त दिशा ने ही स्थान दिया है।अहो ! इस ओर अवलोकन करते ही मेरा चित्त आकर्षित होने लगता है। हाय ! लगता है कि प्रतीच्याभिमुख होकर ही शरीर चेष्टित रहे।

चित्राजी : कुँअर कान्ते ! श्री मिथिलेश कुमार अपनी अम्बा के समीप से, अब आने ही वाले हैं, आपकी इस दशा का दर्शन करते ही वे अपने प्रिय के वियोगाब्धि में इस प्रकार प्रविष्ट हो जायेंगे कि उन्हें उसमें से निकालना अत्यासाध्य हो जायगा। अस्तु, आप शीघ्र इस स्थिति से निकलकर, अपने प्राणनाथ की प्रसन्नता के लिये प्रसन्न चित्त हो जाँय।

[चित्राजी श्रीराम नाम का संकीर्तन कर श्री सिद्धिजी को सचेत करती हैं।]

चित्राजी : स्वामिनीजू ! भवन के भीतर पधार कर प्यारे जू के आगमन की प्रतीक्षा करें हम, ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : बहुत अच्छा चित्रे ! चलो...भीतर ही हृदय-बिहारी का चिंतन करें।

[दोनों प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

द्विचत्वारिंशः दृश्यः ४२

[श्री सिद्धिकुँअरिजी स्वर्णिम-सिद्धि-सदन के द्वार पर लगी लता को मुरझाई हुई देखकर मूर्छित हो जाती हैं । चित्रादि सखियाँ उपचार के द्वारा सचेत कर सुन्दर आसन में मसनद के सहारे उन्हें बिठा देती हैं। साश्रु-लोचना सिद्धिजी हा श्याम सुन्दर ! हा सीताकान्त ! हा सीते ! हा श्यामे ! कह-कहकर आहें भर रही हैं। गद्-गद् स्वर में पद गाती हैं।]

श्री सिद्धिजी : हा हा ! प्यारे श्यामसुन्दर हा ! हा हा ! प्यारी सीते ।
तुम बिन प्राण जात हा रघुवर, हा सिय हिय की मीते ।।
तिहरे विरह कटार की चोटें, खात हाय ननदोई ।
हाय ननँद देखे बिनु मरिहौं, हाय! हाय!जिय जोई ।।

चित्रे ! द्वार के समीप सुन्दर आलवाल में आरोपित बेलि कभी-कभी नर-पति-नन्दनजू का मधुर-स्पर्श पा जाती थी, जिससे स्वयं के सौभाग्य से फूले न समाना, उसके स्वभाव में उतर गया था किन्तु विधिना इस प्रकृति-प्रदेश में किसे एक रस रहने देता है। हाय ! रघुनन्दन के विरह का विचित्र-प्रभाव द्वार-देश की उस लता पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर

हो रहा है। अहो ! उसके हृदय की सरसता पर कौन हृदय मुग्ध न होगा ? किसके हृदय में कसक न उत्पन्न होगी ? कौन लाड़िले लालजू तथा लाड़िली-ललीजू की वियोगाग्नि से झुलस नहीं जायेगा ? हाय ! धिक्कार, धिक्कार मेरे कठोर-हृदय को। (छाती पीटती हैं, चित्राजी सिद्धिजी के दोनों हाथ बल पूर्वक पकड़कर आघात करने से रोकती हैं) सहेली! मुझे प्रिया प्रीतम जू का कितना प्यार प्राप्त हुआ है, तुम जानती हो ? सुर-सुन्दरियों का समूह मेरे सौभाग्य की अतिशयता समझकर ललचाये हुये मन से स्पर्धा करने लगा था किन्तु इस कृतघ्ना के बज्र-सार हृदय में प्रियतम के वियोग का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मुझ से अत्यधिक-कोमल-हृदय तो लतिका का है, जो रघुनंदन के अदर्शन से मुरझाकर प्राण-विसर्जन करने की घड़ी गिन रही है। धिक्कार है मेरे धैर्य को। हृदय में यदि प्रियतम के प्रति प्रेम होता तो उनके अदर्शन को सहने में कैसे सक्षम हो सकती थी मैं, हाय ! प्राण-पखेरू अब तक उड़ गये होते, हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए होते हाय ! इस दम्भ को मैं प्रेम समझ रही थी, हाय ! हाय ! अपने को ही धोखा दे रही थी। श्यामसुन्दर की सरहज और श्री सियाजू की भाभी कहलाने योग्य हूँ मैं क्या ? हाय ! हाय !

(कहती हुई श्री सिद्धिजी पुनः चेतनाहीन हो जाती हैं, चित्राजी चेष्टित कर रही हैं)

चित्राजी : (सिद्धिजी के प्रकृतिस्थ होने पर) स्नेह-विग्रहे ! जैसे भगवान भास्कर के उदय होने से अंधेरे का अधिकार बना रहना और अमृत से मृत्यु की विभीषिका विद्यमान रहना असंभव और अशक्य है, वैसे ही प्रेमास्पद-श्याम सुन्दर का परम प्यार प्राप्त कर प्रेमी के हृदय में प्रेम का उदय न होना सर्वथा असम्भव है। प्रेमिक को क्या पता कि उसके उरस्थल में प्रेम का अटूट स्रोत है, उसने तो अपने प्यारे के चिंतन में चित्त को लगाकर अचंचल कर दिया है। चौर्य-चूड़ामणि ने उसके चित्त को चुराकर पुनः वापस करने की वार्ता कभी सोची ही नहीं, तो भला चित्त के बिना हृदय-कोष में भरे हुऐ प्रेम-धन को वह कैसे अनुमान कर सके। हाँ, प्रियतम को अवश्य उसके स्नेह-रत्न की जानकारी रहती है और सजगता के साथ वह उस निधि की भली भाँति रक्षा भी करते हैं। आर्ते ! आप अपने ननँद और ननदोई के बिना निश्चय है कि प्राण-धारण करने में समर्थ न होतीं किन्तु रघुनन्दन की इच्छा से प्रेम-पथ के पथिक अपने प्राणपति को साथ देने और सुख पहुँचाने के लिये जी रही हैं। दूसरा हेतु यह भी है कि आपकी आत्मा के साथ श्यामसुन्दर रघुनन्दन आपके शरीर का भी अत्यन्त आदर करते हैं, इसलिए उनके धराधाम में रहते उन्हीं के नेत्र-सुख के लिए आपका जीवन धारण करना उनकी इच्छाशक्ति के अनुकूल है। अतएव आप ग्लानि से गलें नहीं । आपके द्वार-देश में लगी हुई लतिका में जो कौशल-किशोर के वियोग की अग्नि का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है, वह आप श्री के हृदय-देश में जलती हुई विरह की होली के निकट प्रान्त में रहने के कारण है, जैसे जल, पूर्ण-जलाशय अपने समीप के स्थल को स्वभावतः आर्द्र बनाये रखता है उसी प्रकार प्रेमियों के दर्शन और स्पर्शन से पत्थर भी मोम बन जाते हैं, प्रेम-देव का प्रभाव जब जड़ को प्रभावित किए बिना नहीं रहता, तब चैतन्य की कथा ही क्या कही जाय ? यही कारण है कि सिद्धि-सदन के जड़ तथा चैतन्य प्रेम के प्रदेश में प्राप्त होकर प्रियतम के परम-प्यार की प्राप्ति के कारण प्रेम स्वरूप बन गये हैं। आप श्री की मौलिक कृपा हम लोगों के अध्यात्म जगत की अमूल्य

निधि है, जिसकी सम्प्राप्ति से श्री नवल नागरी–नागर जू के पादारविन्दों का अमल–अनुराग हृदय को स्पर्श कर रहा है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! जिनके सकृदवलोकन से संसार चक्र में फँसे हुए प्राणियों का संसार–चक्र समाप्त हो जाता है, उन वैदेही–बल्लभ के कृपा–कटाक्षपात से सिद्धि सदन की सिद्धियों की स्थिति है। यहाँ के जड़ जीवों में जो चेतन का कार्य–प्रेम तुम्हें दृष्टि–गोचर हो रहा है, वह कोहवर–कुंज बिहारी–बिहारिणीजू के कृपा–वैभव के कणांश का प्रत्यक्ष–प्रमाण है उनकी दृष्टि जहाँ पड़ जाती है, वहाँ का वातावरण प्रेममय, आनन्दमय और मंगलमय बन जाता है, समझी कि नहीं ? तुम्हें तो मेरी प्रशंसा करने में ही अभिरुचि हैं, इसी में आनन्द का अनुभव करती हो ।अरे !प्रशंसा ही करना है तो प्राणनाथ का यशोगान करो न ! क्योंकि विदेह वंश–विभूषण की श्री, कीर्ति, तेज, बल, वैभव, गुण, स्वभाव, धर्म, कर्म, ज्ञान, योग, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, चित्त, मन, बुद्धि और आत्मा ही मेरी श्री , कीर्ति, तेज, बल, वैभव, गुण, स्वभाव, धर्म, कर्म, ज्ञान, योग, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, चित्त, मन, बुद्धि और आत्मा है। उनके अस्तित्व से ही मेरा अस्तित्व है। मैं उनके बिना ऐसी हूँ, जैसे जीव के बिना देह और नीर के बिना नदी। प्राणनाथ के प्रेम की धवल–धारा ने सिद्धि–नाम की लहर में नीर भरकर उसके अध्यात्म जगत को समुज्वल जलमय बना दिया है, अगर मुख्य धारा को रोक दिया जाय तो वह नहर दुर्गन्धित और शुष्क बन कर कुछ दिन में अस्तित्व विहीन हो जायेगी।

चित्राजी : पति–प्राणे ! आर्य–नन्दन मिथिलेश–कुमार के अतिरिक्त गुण–गान करने का पात्र त्रिभुवन में मैंने मन से भी चिन्तन नहीं किया है, न करती हूँ और न करूँगी। ईश्वर की अहैतुकी कृपा–दृष्टि–निक्षेप के द्वारा प्राप्त–लक्ष्य की सत्यता, दृढ़ निश्चय, विश्वास, श्रद्धा और एकाङ्गी प्रीति ने ही मुझको आपका सहज और सच्चा सहचरित्व प्रदान कर आपके साथ सुनैनानन्दवर्धन जू की परम कृपा और स्नेह पाने की योग्यता अर्पण की है, किन्तु कुँअर कान्ता के कान्त की कमनीय कीर्ति के कीर्तन करने का प्रकार मुझमें मेरी बुद्धि के अनुसार ही तो उदय होगा। स्वामिनीजू ! सच पूछिये तो आपके ननँद–ननदोई श्री सीताराम जी महाराज के नाम, रूप, लीला और धाम में जो प्रीति मेरे हृदय में है, वह इसलिये कि आप दम्पत्ति के वे दोनों प्राणों के प्राण हैं। युगल–किशोर आपके हैं, अतः तदीयत्वानुराग होने से ही मैं अपने हृदय के क्षेत्र में उत्पन्न आप दोनों के प्रति प्रेम के अंकुर की रक्षा कर सकूँगी, अन्यथा मेरे हृदय क्षेत्र की कृषि तत्कृपा–जल की वृष्टि के बिना शुष्क हो जायगी।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! बुद्धि वैशद्य का विस्तार तुम्हारे अन्तःकरण में करने के समय विधाता को अपनी बुद्धि की सारी–शक्ति समर्पित कर देनी पड़ी होगी। धन्य है तुम्हारे तदीयत्वानुराग को। सहेली ! तुम पर जीवन–धन श्री मिथिलेश–कुँआर का अत्यन्त आर्द्र–स्नेह और प्यार है, वे तुम्हें युगल–किशोर की परम–प्रेमिका समझकर तुम्हारे गुण और स्वभाव से रीझे रहते हैं। जब कभी कभी तुम्हारे गुणों की चर्चा मुझसे करते करते प्रसन्नता से विभोर बन जाते हैं तब तुम्हारी कर्ण–प्रिय–प्रशंसा श्रवण कर मुझे जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे मेरा मन ही समझ पाता है। अनुकूल भोग्य की प्राप्ति से भोक्ता की तृप्ति देखकर किस परोसने वाले को आनन्द न आयेगा ? प्राण प्यारे को प्रिय लगने वाली वस्तुओं को प्राणादपि–गरीयसी समझकर अनुरक्ति–पूर्ण सुसज्जित करके

उनकी रक्षा करने का मेरा स्वभाव बन गया है। बालकपन से अपने पर तुम्हारी अनुरक्ति देखकर मैं, तुम बन गई हूँ, प्रमाण में तुम्हारा अन्तःकरण ही साक्षी है।

श्री चित्राजी : कृपा-विग्रहे ! आपकी अपरिमित अनुकम्पा का अनुसंधान करके अपने भाग्य-वैभव को सराहती हुई, आनन्दाम्भोधि में निमग्न हो जाती हूँ। आप दोनों की दाम्पत्य-सुख-समृद्धि अनवरत असीमता का स्पर्श करती रहे, प्रिया-प्रीतम की प्रेममयी-लीलाओं का लालित्य हम सब ललनाओं के मन को मुग्ध करता रहे, बस यही एक कामना है और इसके पूर्त्यर्थ चेष्टित बने रहकर, स्वरूपानुरूप आपका अनुगमन एवं कैंकर्य करना मेरा सहज धर्म तथा परम पुरुषार्थ है। आप श्री का निरुपाधिक दाम्पत्य-सुख मेरा सुख तथा आप दोनों की इच्छा ही मेरी इच्छा है। आप ! अपने औदार्यादि गुणों का अवलम्बन कर अपने समान सुख का साज सजाती हैं, उसे मैं इसलिये स्वीकार करती हूँ कि इससे आपको सुख होता है। यदि आप दम्पति मेरे दुख से सुखी रहें तो मैं दुखी रहने में ही अतिशयानन्द की अनुभूति करूँगी।कुँअर-वल्लभे ! क्या चित्रा का हृदय हमारे हृदय के सर्वस्व आप दम्पति से छिपा है ? हाय.... क्या कह गई मैं। अपनी हृदय-अजिर-बिहारिणी के समक्ष ऐसा कहना दम्भ नहीं तो क्या ? हाय ! आवेश में स्मरण ही न रहा इससे तो गंभीरता का अस्त और नीचता तथा छिछलेपन का उदय ही हुआ है ! हाय.....

[कहकर अश्रु विमोचन करती हुई चित्रा जी संकोच-सिन्धु में समा गई और श्री सिद्धिजी के चरणों में अपने शिर को रख दिया।]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम दिव्य-रागानुगा-भक्ति-राज्य के नन्दन-वन की अमृत-फल से संयुक्त कल्प-लता हो। जिसकी छाया का आश्रय ग्रहण कर हम दोनों को भगवद्भागवदानुराग रूपी अमृत-रस का सुख-कर स्वाद सहज ही सुलभ होता रहता है। पद्म-पराग तथा मालती-मकरन्द-रस के रसिक-मधुप करील की कटीली-झाड़ियों की ओर भूलकर जाने का स्वप्न भी नहीं देखते उसी प्रकार तत् और तदीयानुराग से आकृष्ट होकर भव-रस का स्पर्श क्या है ? तुम नहीं जानती हो क्योंकि तुम्हारे चित्त में विषय के संस्कार का बीज़ ही नहीं है। प्राण-प्रिये ! सत्य कहती हूँ कि हम दम्पति क़ी सुख-चर्या तुम्हारे आधीन है, हम दोनों में स्वारस्य-समुत्पन्न कर शाश्वत-सुख के समुद्र में संलीन करना तुम जैसी निष्प्रयोजना और अनन्या सहचरी का प्रयोजन है इसके विपरीत प्राकृत-सखी-सहेलियाँ स्वार्थ के ताप से संतप्त होकर अपनी श्रेष्ठा से स्पर्धा कर-करके न स्वयं सुखी हो सकती हैं न अपने सेव्य, सेव्या को सुखी कर सकती हैं। अहो ! मुझ पर परमात्मा की अपार कृपा है कि उन्होंने प्रसाद-रूप में तुम जैसी सहचरी प्रदान की है, जो अत्र-तत्र की संगिनी एवं सुख-संविधायिनी है।

[श्री सिद्धिजी प्रेम में भरकर चित्रा जी को अपने हृदय में लगाकर आनन्द मग्न हो जाती हैं।]

चित्राजी : हे स्वामिनीजू ! आप श्री का तथा मिथिलाधिप-नन्दनजू का सुख-सौभाग्य स्वयं सिद्ध है क्योंकि आप दोनों परमार्थ-स्वरूप हैं। जिसे देखकर श्री की श्री श्रीसियाजू तथा विष्णु के विष्णु श्री रामजी सुखी होते हैं और अपना सर्वस्व प्रदान कर और- और देने की इच्छा रखकर अन्वेषण करने पर अपना कुछ नहीं पाते हैं, अस्तु उसे कौन सा प्राप्तव्य अवशेष है। हाँ यह सत्य है कि मैं आपके सम्बन्ध से सर्व-रूपेण सौभाग्यवती

बन गई हूँ। आपने अपने सद्दृश-सुख-सज्जा से सुसज्जित कर लोक-परलोक को आनन्दमय बना दिया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि श्री मिथिलेश-किशोरजू के सहित श्री सीताराम जी महाराज की असीम अनुकम्पा मेरे ऊपर है। वे मुझे वैसे ही स्वयं की वस्तु जानते हैं, जैसे आप श्री को। अहा ! मैं धन्य हो गई, कृत कृत्य हो गई, जीवन-फल पा गई, अब मुझे कुछ करना व पाना शेष नहीं। निष्प्रयोजन प्रेम-पूर्ण आपका कैंकर्य प्रगतिशील एवं प्रतिदिन भाव-प्रवृद्धि को प्राप्त होता रहे, आपके सुखार्थ सेवा के सुख का सूर्य सदा एक रस मानस-गगन में उदित बना रहे और इसके अतिरिक्त कोई काम की कुटिल वासना का राहु कभी उस भानु-भगवान का स्पर्श न करे। अन्तःकरण का सत्य सर्वभावेन यही है कि "मैं कुछ नहीं" यदि कुछ हूँ, तो आपकी दासी हूँ, "मेरा" अकिन्चित है, यदि किन्चित मेरी नाम की वस्तु है तो आप श्री ही हैं।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! प्रकृतिस्थ होकर हम और तुम वार्तालाप कर रही हैं, किन्तु प्राणनाथ भाम-भगिनि के वियोग से विकलता का ही अनुभव किया करते हैं। अपनी अम्बाजी के समीप से अपने भवन में अब तक उनका आगमन नहीं हुआ है। लगता है कि वे अम्बाजी के मुख से श्री किशोरीजू व रामजी की चर्चा-श्रवण कर विरह-व्यथा से अधिक पीड़ित हो गये होंगे उन्हें सम्हालने के लिये श्री सासुजी के समीप जाना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। इसलिये उनके बिना उद्धिग्न मन को बहलाने के लिये हम कोहवर-कक्ष चलें, ठीक है न ?

चित्राजी : हृदय बिहारिणीजू ! हृदय की जान गईं आप। मेरे मन में भी यही इच्छा उठ रही थी। बहुत अच्छा है, शीघ्र हम लोग वहाँ चलें।

[श्री सिद्धिजी चित्राजी के सहित कोहवर-कुंज प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

त्रय चत्वारिंशः द्दश्यः ४३

[कोहवर-भवन के कक्षों की भव्य-नव्य-रम्यता सर्वाङ्गीण-सुषमा के साथ रस से ओत-प्रोत है, जिसमें शयन कक्ष, मयन के मान को मर्दन करने वाला अत्यन्त कमनीय है। रत्न-जटित, कंचन-पलंग पड़ा है, जिसमें कोमलास्तरण बिछे हैं। उपवर्हणादि आवश्यक सामग्रियाँ यथा स्थान रखी हैं। रत्न-गुच्छों से अलंकृत चारु-चाँदनी लगी हुई है। पीकदान भी यथा स्थान रखा है। अनेक-अनेक दामपत्यर्थ के परिचायक सुचारु-चित्र लगे हुये हैं। कुशल-कलाकारों की कुशलता की द्योतक वैदूर्यादि-मणियों से जटित कक्ष-भीति कक्ष को प्रकाशित कर रही है। श्री सिद्धि कुँअरिजी, चित्राजी के साथ कोहवर-कक्ष पहुँचती हैं, वहाँ पहुँचते ही उनके हृदय में कोहवर की एक-एक लीला उदय होने लगती है और स्मृति की सहायता से तदाकार होकर, तच्चेष्टा करने लगती हैं।]

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर ! केलि-कुंज में चलकर कलात्मक कन्दुक-क्रीड़ा करने के लिये कौशल किशोर के हृदय-भीति पर कामना का चित्र खिंच गया होगा। बात

सत्य है न ? अरे ! कामिनी के संग कन्दुक-क्रीड़ा की इच्छा काम पूर्ण के हृदय में उत्पन्न हो जाने से ही तो काम और कामिनी को अतुल प्रशंसा का पात्र बनना पड़ा है।

सिद्धि मुख से श्रीरामजी : कान्तिमयी-कमनीय-क्रीड़ा-भूमि की भव्यता तथा कन्दुकादि-केलि की साहाय्य सामग्रियों का सुन्दर समग्र-दर्शन ही तो केलि-कामुकों को केलि करने के लिये समुत्सुक बनाकर प्रेरणा देता है, तदनुसार केलि-रस की प्रयोग-शाला में पहुँच कर प्रेरित-पुरुष की क्रिया-कलापों का वैचित्र्य आप जैसी कामिनियों के रोम रोम में केलि करने की आतुरता पूर्ण त्वरा को भर देता है, केलि प्रिये।

श्री सिद्धिजी : रसिकेश्वर ! हमारे कोहवर-भवन का भव्य-केलि-कुंज पूर्ण-काम को क्या कामना से संयुक्त कर रहा है ! अरे ! अरे ! पूर्ण केवल अपूर्ण ही नहीं हो रहे हैं अपितु केलि-कुंज की स्मृति ने उनके मुख में पानी भर कर लार टपकाने की क्रिया को सबके सम्मुख रख दिया है क्यों ?

सिद्धि मुख से श्रीरामजी : रसप्लुते ! आपकी केलि-कुंज की कमनीयता ने ही तो पूर्ण काम को अपने पितृ-देव से पृथक कर आपके भाव-भवन का भिखारी बना दिया है ।

श्री सिद्धिजी : रस-लम्पट की इस भिक्षा-वृत्ति से प्रसन्न होकर मैं केलि-कलाविद को केलि-कुंज का अधिपति बनाकर स्वच्छन्द-विहार करने की अनुमति दे दूँगी रघुनन्दन !

सिद्धि मुख से श्रीरामजी : केलि-पण्डिते ! केलि-कला की सिद्धि तो श्रीधर-कुमारी श्री सिद्धि कुँअरिजी के हाथ है। आज्ञा ही नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी कृपा से केलि-कला का विशद विद्वान हो जाऊँगा मैं।

श्री सिद्धिजी : विनोद-प्रिये ! सिद्धि कुँअरि की अध्यक्षता के बिना ही आप केलि-कला के स्नातक हो जायेंगे, क्योंकि केलि-कुंज के दर्शन और स्पर्श का आश्चर्यमय-चमत्कार है। आपको स्वयं केलि की सारी कलायें वरण कर लेंगी।

सिद्धि मुख से श्री रामजी : केलि-निपुणे ! हमने तो केलि-कला का आचार्य आप ही को वरण कर लिया है क्यों कि बिना गुरु-प्रदत्त कोई विद्या फलवती नहीं होती, इसलिए श्री गणेश तो आप करा ही दीजिए। ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : (विनोद में) अच्छा प्यारे ! जब आपने वरण ही कर लिया है तो आप पधारें केलि-कुंज में। मैं वहाँ ॐ नमः सिद्धम् कहकर आपको केलि का प्रारम्भ कराऊँगी। चित्रे ! श्री किशोरी जू को लेकर सखियों समेत केलि-कुंज को तुम प्रस्थान करो, मैं प्यारे के साथ आती हूँ ।

सिद्धि मुख से श्री रामजी : केलि-कामुके ! आपके प्रेम-रस से आप्यायित आपका अनुवर्तन करना मुझे अत्यधिक आत्म-प्रिय है, अतएव अविलम्ब केलि-कर्ताओं के पद-चिन्हों के अनुसार मैं भी आपका अनुगमन कर रहा हूँ।

[श्री सिद्धिजी उठकर आवेश में आकर केलि-कुंज में पहुँच जाती हैं, वहाँ उन्हें भास हो रहा है कि श्री किशोरीजी चित्रादि अलियों के साथ सिंहासन में विराज रही हैं, अपने श्री किशोरीजू से कहने लगती हैं]

श्री सिद्धिजी : श्री लाड़िलीजू ! रसिकराय–रघुनन्दनजू की इच्छा है कि आपके साथ कंदुक–क्रीड़ा करें। इसलिये संकोच–विसर्जन कर प्रियतम जू के संग प्रियाजू की केलि का श्री गणेश अद्य अत्यावश्यक है। कहिए ठीक है न ?

सिद्धि मुख से श्री किशोरीजू : भाभी जी ! आपकी भावना से भावित होकर आपकी ननँद में क्या सामर्थ्य है कि वह अपने भ्रातृ–भार्या की अभिरुचि में अवरोध उत्पन्न करे। अस्तु, आप अपनी आयोजित–योजना की पूर्ति प्रेम–पूर्वक करें।

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू की जै, श्री लाड़िलीजू की जै। रघुनन्दन ! आइये, यह क्रीड़ा स्थली और ये कन्दुक आपका है। श्री किशोरीजू के साथ आप अलौकिक केलि करें और मैं दिव्य–दृश्य की द्रष्टा बनकर केलि–दर्शन करूँ, क्योंकि हार–जीत का निर्णय फिर कौन करेगा ?

सिद्धि मुख से श्री रामजी : वास्तव में प्रिय–दर्शनीजू के दर्शन के लिये ही तो हमारी क्रीड़ा है।

[श्री सिद्धिजी के चित्त में युगल–केलि प्रारम्भ हो गई। आनन्द का सिन्धु लहराने लगा।]

श्री सिद्धिजी : बहुत अच्छे, बहुत अच्छे ! राघव ! रति–मद–मर्दिनी किशोरी–जू से केलि–कला में विजय न पा सकेंगे आप ! ऐसा प्रतीत हो रहा है, यद्यपि वर्तमान–समय में समरसता हो रही है, परस्पर में बराबर रस वृद्धि के लिए केलि–कला का आदान–प्रदान हो रहा है। अहा ! आनन्द, महा आनन्द ! युगल रस–मूर्तियों की जै हो, युगल रसिकों की जै हो। युगल–केलि–कला–विशारदों की जय हो। सदा जय हो।

[श्री सिद्धिजी हर्ष मूर्छा को प्राप्त हो जाती है]

चित्राजी : (उपचार के द्वारा सचेत करके) प्रेम–विग्रहे ! प्रेम–जगत में प्रेम की परिस्थितियों की इति ही नहीं। अहो ! मुझे आप श्री के पार्थिव–शरीर में प्रेम की विचित्र–विचित्र स्थितियों के दर्शन का सौभाग्य होता रहता है। अपने ननँद ननदोई के अविद्यमान समय में भी आप अपने भाव–साम्राज्य में प्रवेश कर इस कुंज में युगल–केलि के दर्शन का आनन्द सुलभ कर रही हैं, धन्य है आपके अनुराग–युक्त उर की उदारता को, धन्य है आपकी रस–पूर्ण भावुकता को जिसे ग्रहण करने के लिए भाव का भिखारी, भूपति–नन्दिनी की भाभी के हृदय–भवन के भव्य–भव्य भावों को भरपूर पा, पा करके अपनी भूख की ज्वाला मिटाया करता है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! लीला–प्रिय–लाड़िले–लाल व लाड़िली–ललीजू क्या यहाँ नहीं हैं ! उनकी अविद्यमानता की पुष्टि तुम क्यों कर रही हो ?

चित्राजी : स्मृतिशून्ये ! वास्तव में विदेह–तनया जू के साथ श्री रघुकुल–तनय श्री अयोध्या धाम में सम्प्रति पधार कर वहाँ की सौख्य–समृद्धि का शतशः सम्वर्धन करके अयोध्यावासियों को आनन्द दे रहे हैं। यह आपके निर्मल–निरोध पूर्ण–चित्त का चमत्कार है, जिसमें चन्द्रकीर्ति रघुनन्दन के चारु–चरित्रों का चित्राङ्कन होता रहता है, और आप श्री के मन में प्रेमास्पद के मिथिला–निवास की प्रतीति प्रादुर्भूत करता है, तदनुसार आप श्री तत्–तल्लीला में तल्लीन होकर तदोचित व्यवहारों की व्यवहृति करने लगती हैं।

श्री सिद्धिजी : (वियोग स्मृति होने पर साश्रु)

पद : केते दिवस गये बिन देखे।

हाय ननँद मोरी सुकुमारी, हा ननदोई तुमहिं नहि पेखे।

शत शशि, शत रति-काम-लजावन, मोहक मुख-मंडल बिनु रेखे।

बसत हमहिं मिथिला अँधियारी, स्वर्ग, नरक सम सत हैं लेखे।

स्वर्णिम समय हर्ष कब अइहैं, लखिहैं नयन अनूपम वेषे।

हाय ! हाय ! चिरकाल हो गया मुझे बिना ननँद-ननदोई के मिथिला की अंधेरी में रहते। सखीरी ! हाय ! अब कब वह स्वर्णिम-समय सम्मुख आयेगा जब नवल-नागरी-नागर जू का दर्शन सिद्धि-सदन में सम्प्राप्त कर सकूँगी मैं।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! धैर्य का अवलम्बन लें, मैंने सुना है कि कुछ दिनों में श्रीमिथिलाधिपजूअपने कुँअर को अवधपुरी भेज कर समाज सहित श्री कौशल-नरेश को पहुनई करने के लिये बुलवाने वाले हैं। अपनी अनुजाओं के साथ श्री किशोरीजू का और अनुजों को लेकर श्री रामभद्रजू का मिथिला आना तो अनिवार्य ही रहेगा।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! चलो कोहवर-कुंज के समग्र कक्षों का दर्शन शीघ्रता से कर लें। प्राणनाथ अपने भवन में आकर मुझे अपनी सेवा में संलग्न न पायेंगे तो उन्हें कष्ट होगा और मुझे अपचार के परिणाम में पछताना पड़ेगा।

चित्राजी : कमल-कान्ति से कमनीय और सुगन्धित-शरीर वाली सुर-सुन्दरियों से सर्वश्रेष्ठ मेरी स्वामिनीजू ! छाया की तरह अनुगमन करने वाली आपकी सहचरी हूँ मैं, आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। अतएव आप श्री दूसरे कक्ष में पधारें, मैं तो बिना कहे ही पीछे-पीछे चलने को सदा समुद्यत रहती हूँ। लीजिये मैं खड़ी हो गई आप कृपा कर आशु पधारें।

[दोनों एक कक्ष से दूसरे कक्ष में प्रवेश करती हैं। श्री सीताराम जी की सेवा-सामग्रियों को देखकर तथा तत्सम्बन्धी-चरित्रों का स्मरण कर प्रेम-सरोवर में मज्जन-उन्मज्जन करती हैं। सिद्धिजी एक ताखे में पधारी हुई श्री रामजी की पदत्राणों का दर्शन करती हैं, जो रत्नों एवं स्वर्ण-सूत्रों से सुसज्जित-अरुणवर्ण के मखमल से बनी हैं। देखते ही साश्चर्य आनन्द में भरकर चित्राजी से एकाएक बोल उठती हैं।]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! ऐ चित्रे ! देखो, देखो, वह देखो न ! प्रियतमजू की पनहियाँ पधारी हैं।

[कहती हुई लपककर उठा लेती हैं, पुनः विभोर होकर उन्हें शिर, नेत्र और हृदय में बार-बार लगाती हैं, अपने अंचल से झाड़-पोंछकर, भर नेत्र देखती हुई अश्रु के जल से अभिषेक करती हैं और चित्रा जी की ओर देखकर कहने लगती हैं, कि....]

चित्रे ! वैदेही-वल्लभजू की जूतियाँ अपने वल्लभ की चरण-गुलामी छोड़कर यहाँ क्यों रह गई ? अहो ! लगता है कि कृपा-सिन्धु की कृपामयी पनहियाँ आर्तमय मेरे "पाहि माम" पुकार को श्रवण कर अपनी इस दीन दासी का पालन-पोषण करने के लिये स्वयं ही रह गईं हैं आपकी यह आदर्श, आर्ति-हारक क्रिया-प्रणाली और उसकी गरिमा आपके सहज स्वरूपानुकूल है। धन्य है आप श्री के औदार्यपूर्ण उत्तरदायित्व को संशय हीन

मेरे आत्मा का यह सत्य संदेश है, अन्यथा श्रीरामभद्रजू अपने चरणाश्रयी को कदापि चरणों से पृथक कर चले न जाते। (पनहियों को दुलारकर) अरी मेरी स्वामिनी ! आज तक आप एकान्त वास करने का क्या कोई आवश्यक अनुष्ठान ले रखी थीं ? हाय मुझे अपने दर्शन से इतने दिन वंचित क्यों रखीं ? स्वकीय-सेवा का सुअवसर क्यों नहीं दिया ? हाय ! विरह-वह्नि में झुलसाकर मेरा परिशोध करना क्या आपका भी अभिमत था ? जब आप अकारण-दया परवशता के कारण कौशलेन्द्र-कुमार की सम्मति सम्प्राप्त कर इस अकिंचना के हित और प्रिय करने के लिये कोहवर-कुंज में निवास करने लगी थीं, तब मुझे अपनी सेवा में नियुक्त क्यों नहीं किया ? हाय ! प्रेमिक मूल्यों की एक मात्र आप संस्थापिका और आदर्श प्रेम की पथ-प्रदर्शिका हैं आप श्री सम्पूर्ण दिव्य गुणों की धाम हैं। हाय ! धूल-धूसरित-श्री अंगों को देखकर मेरी छाती फटी जा रही है। सेविका की विद्यमानता का कोई प्रयोजन न निकला। अहा हा ! कितनी कृपा श्री पाँवरी जी की है। दर्शन करते ही हृदय हृदय-विहारी के पूर्णतया-नियन्त्रण एवं अधीनता में रहकर जीवन-यापन सा करने लगा है, प्रतिफल में उसकी दाह कम हो गई। देवि ! अपनी सेविका को प्रियतम-पद-पंकज पराग की भ्रमरी बनाने में पूर्ण समर्थ हैं, भागवद्धर्म के वैभव को वृद्धिगत करने वाली समर्थ शक्ति हैं अपने आश्रित वर्गों के विरोधी भावों का शमन करने वाली शरणागत-वत्सला-अचिन्त्य-अविनाशिनी दुर्गा हैं, मैं आपकी शरण हूँ, शरण हूँ, शरण हूँ।

[कहती हुई पनहियों की शरणागति करती हैं, शिर पर उन्हें रखती हैं, हिचक-हिचक कर रोने लगती हैं, आर्ति-भावापन्न होकर करुणा-क्रन्दन करती हुई मूर्छित हो जाती हैं।]

चित्राजी : (सचेत करके) आर्ति-हृदये ! आर्ति-हरण जू की आर्ति-अतंक-पदत्राणों की प्राप्ति, आर्ति का अंत करने के लिये ही हुई है। यह निश्चय है कि आप श्री का भविष्य भली-भाँति समझकर अपने वियोग की अग्नि में भस्मीभूत न होने देने के लिये कृपासिन्धु-श्री सीतावल्लभजू ने आपके लिये अपनी जूतियों का अवलम्बन ग्रहण करना अत्युत्तम समझा है, और इन परम-पवित्र-पद-त्राणों को यहाँ स्थापित कर यह आदेश दिया है कि हमारे प्राण-प्रिय-श्याल और सरहज की सर्वभावेन रक्षा करना तुम्हारा कार्य होगा अतएव उन्हें लेकर आप अपने अयन को पधारें और विरह-विभोर अपने प्राणनाथ के नयनों का विषय बनाकर उनकी हृदय-दाह में शान्ति का संचार करें और उपाधिरहित अनुपम आनन्द की अनुभूति उन्हें अविलम्ब कराने की प्रयोगात्मक साधन प्रक्रिया में लग जाँय।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! अवध-ललन की ललित-पनहियों को पाकर मेरे हृदय में परम-शान्ति का विस्तार हो रहा है। तुम्हारा बुद्धि-वैभव जन्य सुझाव एवं विवेक पूर्ण, निर्भ्रान्त, सूक्ष्म-संदर्शन की प्रक्रिया शान्ति-प्रद स्वकीया-सहचरी के स्वरूपानुरूप है। मैं अपनी आली के बचनों का समादर करती हुई, सस्नेह साधुवाद देती हूँ कि प्राणनाथ जू के प्राण-प्रहर्षण के लिये उनके प्राण प्रियतम की पनहियों को उठाकर उनके समीप पहुँचाने की प्रेरणा मुझे दी है। यही विचार मेरी बुद्धि में बार-बार आ रहा था, अब अपनी सहेली की अनुमति प्राप्तकर विचार में दृढ़ता उत्पन्न हो गई है। क्यों अब चलें न, प्यारे जू के समीप ?

चित्राजी : हाँ, हाँ, पति-प्रिये ! प्राणनाथ के सन्निकट शीघ्र चलना चाहिये। सम्भव है, श्री अम्बाजी के आलय से आकर आपकी प्रतीक्षा करते हों वे।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! त्वरा से साथ चलें, प्राणेश्वर जू अपनी प्रियतमा के भवन में पधार कर प्यारी की प्रतीक्षा करें, यह मुझे सह्य नहीं।

(श्री सिद्धिजी शीघ्रता से चित्राजी के साथ प्रस्थान करती हैं।)

पटाक्षेप

....

चतुश्चत्वारिंशः दृश्यः ४४

[श्री सिद्धिजी कोहवर-कुंज से चलकर स्व-सदन में सखियों के मध्य बैठी हुई श्री लक्ष्मीनिधि जी के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। अल्प-समय के पश्चात कुँअर के आने पर पाद्यादि देकर उनकी आरती उतारती हैं, पुनः प्रणाम कर पति-देव के परम-प्यार का अनुभव करती हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी अपनी प्राण-प्रियतमा को अपने आसन में बैठा कर परस्पर इष्ट-चर्चा करते हैं।]

पद : कैसी बनी वर जोरी ननँद ननदोई की।

गौर श्याम सियराम सुखद तन,

श्रेय गुणन के आगर दोऊ, हेय अहैं नहिं थोरी।

वेद-वेद्य दोउ प्रकृति के पारे, शक्ति ब्रह्म रस बोरी।।

सुर, नर, मुनि अरु नाग उपासत, विधि हरिहर कर जोरी।

युगल नृपति युग रानि तपोबल, प्रकटे भुइँ कृप कोरी।

हमहुँ प्रसाद लही हैं रावरि, आस पूर्ण भै मोरी।

हर्षण श्याल-भाम इक संगे, निरखत चित भयो चोरी।।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : वेदज्ञे ! वेद के सभी श्रव्य एवं अमूर्त-अर्थों के उपदेश को मूर्त रूप में प्रकट करने के लिये जिस अगोचर परमात्मा ने स्वयं गोचर अर्थात् दृश्य रूप ग्रहण किया है, उस अनिर्वचनीय परम तत्व की कृपा एवं स्व-प्रिय-नाम के संकीर्तन ने अनुराग की अंतिम कक्षा में आपके चित्त को स्थित किया, पुनः प्रिय के चिन्तन द्वारा विश्लेष की वह्नि में उसका परिशोधन हुआ, तब सर्व-समर्पण की कसौटी में कसकर चतुर-चूडामणि ने आपके चित्त-कंचन को लेकर आपको अपने सहित अपने सर्व-स्वत्व को दे डाला है। यह मैं भली-भाँति जानता हूँ कि वे अपना सर्वस्व देकर भी संकुचित-मुद्रा का आदर करते हैं, क्योंकि सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र, अनन्य और विशुद्ध प्रेम ही तो लीला विहारी भगवान को अनायास वश में करने वाला है। अहो ! अनाख्येय-औदार्य का दर्शन करके रघुकुल-मण्डन-श्री रामभद्रजू की भद्रता पर जड़-चेतनात्मक-जगत अपने आपको समर्पण कर उनके दासत्व का ही अभिनन्दन करता है और दास्य धर्म को अपना कर ही स्व-सत्ता मे स्पृहा रखता हुआ उज्जीवन प्राप्त करता है। अहा ! अपना कितना अवर्णनीय-अनुपम सौभाग्य है कि लोक-लोचनाभिराम-राम अपनी अनुजा के पति परमेश्वर हैं।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रेम के सात्विक चिह्नों से युक्त हो जाते हैं। श्रीसिद्धि जी प्रकृतिस्थ करके मधुर-वाणी के द्वारा उनके हृदय को शान्ति-प्रदान करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! आपकी अनिर्वचनीय अनुकम्पा से ही मैं आप जैसे नर-नारायण के पत्नीत्व पद में प्रतिष्ठित होकर आपके स्नेहाधिकार और परम-प्यार को प्राप्त कर चरम-तृप्ति का अनुभव कर रही हूँ। श्री श्यामसुन्दर-रघुनन्दन जू का ननदोई के रूप में मुझे मिल जाना तो आनन्द के बीच आनन्द का स्वयं-साकार-स्वरूप-धारण कर चर्म-चक्षुओं का विषय बन जाना है। अन्वय और व्यतिरेक दोनों दृष्टियों से जो स्थावर और जंगम जगत का प्राण है, वह हम लोगों का सम्बन्धी बनकर जब अपने अप्रतिम प्यार-पियूष से प्रतिदिन हमारा पालन करता है, तब हमारे सौभाग्य की सीमा का वर्णन करते हुये शेष, शारदा और श्री शंकर, इति को न प्राप्त कर लौट आयें तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? दासी में प्राणधन को प्रिय लगने वाली जिस जिस वस्तु की प्रतीति होती है, वह वस्तु वास्तव में प्यारे के हृदय-कोष में संग्रहीत-वस्तुओं का प्रतिबिम्ब है अन्यथा जड़ मे आत्मा के गुण कहाँ ? आकाश के आधार पर घट की स्थिति है, घट के आधार पर आकाश की नहीं।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! आपका बुद्धि-वैलक्षण्य एवं तद्वैशिष्ट्य बड़े-बड़े सूक्ष्म-दर्शियों के लिये भी अगोचर और अप्राप्य है, जिसमें परम-परमार्थ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म श्रेष्ठ-सिद्धान्तों का ज्ञान समाहित है, उस बुद्धि के समक्ष साधारण-सापेक्षा-बुद्धि का संकुचित हो जाना स्वाभाविक है, अतएव मेरी बुद्धि आपकी बुद्धि की सहचरी होकर भी कभी-कभी अपनी सहेली के कला-कौशल और औदार्य-युक्त-सूक्ष्म-सौन्दर्य का समीक्षण करके आश्चर्य के वन में अकेली बिहार करने लगती है। प्रिये ! आप जैसी परमार्थ-पथ प्रदर्शिका जीवन-संगिनी का संग तथा परमार्थ-स्वरूप श्री भगिनि-भाम का सम्प्रयोग, भगवती श्री सियाजू की अहैतुकी अनुकम्पा का परिणाम है। अहो ! मेरी लाड़िली का स्नेह मुझ पर अपार है। हा ! अपनी चेष्टाओं से जो मुझे अतिशयानन्द से आवृत्त किये रहती थी; वह मेरी किशोरी आज मेरे नेत्रों का विषय नहीं बन रही है। हाय ! कब अपने अंक में उठाकर प्राण-प्रिय अपनी लाड़िली लली को प्यार करूँगा। हाय.... ।

[कह कर प्रेम मूर्छा को प्राप्त हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) आर्य ! आप श्री परमार्थ-स्वरूप अपने बहन-बहनोई के बर्हिप्राण हैं। अस्तु ! प्रमोद-विपिन-बिहारी-बिहारिणीजू का अत्यधिक-स्नेह पाना आपके स्वरूपानुरूप ही है। आपके सम्बन्ध से श्री युगल-किशोर जब अत्यधिक आदर करते हुये मुझे अनुराग-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, तब आपके विषय में कहना ही क्या है। मैं तो समझती हूँ कि नृपति-किशोर-किशोरीजू के आप आत्मा हैं इसलिये आत्मा में रमण करना ही तो आत्मा-राम का सहज स्वरूप है। अनुरक्ति युक्त आपके स्मरण में अष्टयाम लगे रहना मेरे ननँद-ननदोई का सहज स्वभाव हो गया है। वे अयोध्या में निवास करके भी आपके मिथिला में ही रहते हैं। अपने श्याल के हृदय में शान्ति-सुधा की सृष्टि करने के लिये संश्लेष और विश्लेष दशा में वे प्रयत्नशील बने हुये हैं, जैसे घट उठाकर भाग जाने से स्थूल दृष्टि वालों को घटाकाश भागता सा प्रतीत होता है किन्तु सूक्ष्म-दर्शियों को आकाश के भीतर घट की स्थिति दिखलाई पड़ती है। आकाश स्वयं घट के बाहर भीतर स्थित होकर उस घट को घट संज्ञा देने एवं सुरक्षित रखने के कारण बना हुआ है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : भद्रे ! आपके वचन सर्वथा सत्य हैं किन्तु वर्तमान समय में शान्ति का स्वप्न नहीं। उपर्युक्त ज्ञान की गरिमा रघुनन्दन के रूप जाल में फंसकर दुर्बल एवं मृत प्राय हो गई है चित्त को लाड़िली-लाल की चिंता ने वरण कर लिया है। नेत्रों में निद्रा देवी के लिये स्थान नहीं रह गया है क्योंकि श्याम सुन्दर रघुनन्दन अहर्निशि उनके हिंडोरे में झूलते रहते हैं। अस्तु जागरण-जन्य उद्विग्नता को लेकर अशान्ति के बीहड़-बन में भ्रमण करता रहता हूँ। हाय ! मेरे आराध्य देव ने मुझे कुछ आधार भी नहीं दिया, अपने अनुरूप अपना चित्र-चित्रण कराकर भेजने का वचन दे गये थे वे किन्तु वह भी मेरे पापों की पीनता से अब तक सुलभ न हो सका। हाय... ! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

[कहते हुये अधीर हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ करके) व्याकुलेक्षण ! अनुग्रह-महोदधि अवधलाल अपनी दयालुतावश अपनी अनुपस्थिति में आपके लिये अत्युत्तम-आधार छोड़ गये हैं। प्राणनाथ ! दासी बतलाने वाली ही थी कि आप श्री के साथ अन्य वार्ता करने का अवसर आ गया। अस्तु, अभी तक निवेदन न कर सकी, अपराध क्षमा हो।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! मेरे प्रियतम-प्राणाधार अपने श्याले के प्राणों की सुरक्षा के लिये सचमुच कोई आधार आपको दे गये हैं क्या ? अहो ! जन-मन-रंजन राम को उनके रामत्व ने श्याल का सम्पर्क निज के सदृश कराने के लिये किसी स्ववस्तु का सम्प्रयोग-दान देने में प्रेरित किया है क्या ?

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! श्यामसुन्दर दासी को दे नहीं गये, अपितु आधेय के लिये आधार को कोहवर-कुंज में छोड़कर चले गये हैं। अहो ! यह उनका आश्चर्यमय औदार्य है, कृपासिन्धु की कृपा का प्रत्यक्ष-पूर्ण-प्रमाणी करण है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हित-कारिके ! अशान्ति-शमनकारी-शान्तिप्रद सुन्दर आधार, सही में श्यामसुन्दर ने यहाँ रख छोड़ा है ?

श्री सिद्धिजी : नाथ ! क्या अपने प्राणधन से कभी मिथ्या भाषण दासी ने किया है ? स्मरण हो तो बतलाने की कृपा की जाय।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : मैंने अपनी प्रियतमा की मुख विनिस्सृत-वाणी में सदा सत्य, प्रिय, मधुर और सर्वभूत-हितंकारी-वचनों को ही श्रवण किया है। हंसी और स्वप्न में भी असत्य और अप्रियता का अवलम्बन आपकी वाणी ने उसी प्रकार नहीं लिया है, जैसे चन्द्रमा की चाँदनी ने तम और ताप का।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ का शंकास्पद-वाक्य अपने प्रेमास्पद के स्वभाव में संशयापत्र नहीं है अपितु नैच्यानुसंधान संयुक्त मन ने अपने को अनाधिकारी समझने के कारण तथा अहैतुकी अनुकम्पा को प्राप्तकर आश्चर्य में पड़ जाने के कारण वाणी को ऐसा प्रश्न करने की प्रेरणा दी है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आपका अनुमान सर्वथा सत्य से संश्लिष्ट है। आपके वचनों पर तथा रघुनन्दन के करुणामय स्वभाव पर मेरे मन में नाम मात्र संशय नहीं है "मेरे इष्टदेव अपने अधमजन के लिये आधार की संस्थापना यहाँ कर गये हैं।" यह सुनकर आश्चर्य-सागर में निमग्न मैं आतुरतावश ऐसा प्रश्न कर बैठा।

श्री सिद्धिजी : जीवनधन ! प्रेमातुरों की प्रेम-पिपासा अनिर्वचनीय होती है, वे तृषा की तरुण-अंधेरी में आकुलतावश आँख बन्द किये रहते हैं। पेय-प्रकाश का समाचार

पाते ही प्रेम-मत्त होकर जो जो कहते हैं, वे सभी वचन स्वर्णार्घ होते हैं। इससे उनके प्रेम की उच्च-स्थिति का ज्ञान होता है ! अतएव आपका कथन आपके स्वरूपानुरूप ही है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! इन बातों को छोड़ें, यह तो बतलायें कि हमारे आराध्य देव अपने दास के लिये कौन सा आधार आपकी जानकारी में यहाँ छोड़ गये हैं। अकुलाई हुई आँखें उसका अविलम्ब अवलोकन करना चाहती हैं।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! परमार्तों के लिये प्रभु-पाद-पद्मों की पनहियाँ ही तो शरण्य हैं अतएव शान्ति संविधायिनी प्रणतार्ति-हारिणी-पाँवरियों को हम लोगों के रक्षणार्थ वे रख गये हैं।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हृदय-हर्षिणीजू ! मुझे शीघ्र उनका दर्शन कराकर जलते हृदय में शान्ति का संचार करें। मृत प्राय को अमृत जड़ी सुँघाकर जीवन दान दें।

श्री सिद्धिजी : (जूतियों को लाकर) प्रेम मूर्ते ! लीजिये, अपने प्रियतम रघुनन्दन की प्रेम-प्रदायिनी पनहियाँ।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी उठकर श्री सिद्धिजी के हाथों से पदत्राणों को लेकर शिर पर रखते हैं, हृदय और आँखों से लगाते हैं, प्रेम-वारि से उन्हें परिप्लुत किये दे रहे हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अहा हा ! मेरे भाग्य की विधाता रघुवर-लालजू की लोनी-लोनी पनहियों ने कृपा कर मुझे दर्शन दिया है अतएव श्यामसुन्दर के दर्शन में देर का दर्शन न होगा। अहो ! आज मेरे आनन्द का अनुमान कौन कर सकता है। आज आकाश के नीचे निवास करने वाले किस सुर-नर-मुनि और नाग को श्रीरामभद्रजू की जूतियों ने वरण कर अपना कैंकर्य प्रदान करने का सुअवसर दिया है। आश्चर्य ! आश्चर्य !! इस अधम पर इतनी अपरिमेय-अनुकम्पा !

[हर्ष से मूर्छित हो जाते हैं। सचेत होने पर....पुनः]

मेरी शरण्ये ! मेरे प्रियतम-पद की पदत्राणिके ! मैं जानना चाहता हूँ कि अवध-नरेन्द्र के कुमार कहाँ हैं ? क्या वे अपने आत्म-सखा के समान कभी मेरा स्मरण करते हैं ? क्या मैं उनके दर्शन-वारि को प्राप्तकर अपनी चिर-दिनों की तृषा को शान्त कर पाऊँगा ? क्या वे लोक-लोचन सुखदायक अपने सिद्धि-सदन के प्राङ्गण में पधारकर मुझे अपना निर्विघ्न सम्प्रयोग प्रदान करेंगे ? क्या कभी परमैकान्तिक-मिलन का सुख अपने सौजन्य से देने की कृपा करेंगे ? हाय ! बोलने में आप, देर क्यों कर रही हैं ? आप के दिव्य दर्शन को प्राप्त करके भी आपकी वाणी न सुन सकूँ तो मेरे भाग्य की श्वेतता में अभाग्य की काली-बिन्दु का पड़ना ही है ? कहिये.... कहिये, कृपा कर शीघ्र कहिये, दीनों पर दया करने के लिये ही आपका अवतार है।

[जूतियों को बार-बार शिर, हृदय और नेत्रों में लगा-लगाकर व्याकुलता का अनुभव कर रहे हैं। इतने में जूतियों की ओर से शब्द सुनाई देते हैं।]

श्री जूतियाँ : मिथिलेश कुँअर ! आनन्द कन्द-रघुकुल-चन्द्र श्री राम आपका स्मरण कर-करके विभोरता के वन में आठोंयाम विहार करते रहते हैं। आपके दर्शन की अप्राप्ति से उनके वारिज-नयन, वारि की वर्षा किया करते हैं। आपके गौर-वपुष का ध्यान उन्हें पीताभ या ईषत श्याम कहने का संयोग समुपस्थित कर दिया है, धन्य है आपके प्रति उनके अनुराग को। श्याम सुन्दर स्व-सुहृद-दर्शन करके ही शान्ति से शयन कर पायेंगे। अतएव अपने सरहज के सदन में शीघ्र पधारकर अपने श्याल के अविरल-

आलिंगन के द्वारा आनन्द का अनुभव करेंगे और परमैकान्तिक-सुख का आदान-प्रदान करके अपने चरम-लक्ष्य की संप्राप्ति की अनुभूति करेंगे। आप समय का सम्मान करते हुये किंचित काल प्रतीक्षा करें। सच पूछें तो आप दोनों श्याल-भाम एक-दूसरे से पृथक हैं ही नहीं, तत्वतः दोनों का सदा संयोग है, वियोग का अनुभव लीलामात्र है। आप दोनों की पारस्परिक प्रीति अतर्क, अपरिमित और अनुपमेय है दोनों परस्पर प्रेमिक और प्रेमास्पद है, दोनों की कहनी, करनी और रहनी विधि, हरि, हर समेत सभी सुर-नर-मुनि-गणों से वन्दित है। वेद-वर्णित महान आदर्श, श्याल-भाम के जीवन में ही अपनी पूर्णता के साथ अवतरित होकर मूर्तिमान हुआ है। अस्तु, आपका मुखाम्भोज अहर्निशि विकसित बना रहना अनिवार्य-आवश्यक है क्योंकि रामरूपी भ्रमर का वह परम भोग्य है, उसके बिना उन्हें भूख की ज्वाला जलाने को समुद्यत रहेगी।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : देवि ! आपके श्री मुख से ये अमृतोपम-संदेश पाकर अमृत हो गया मैं किन्तु "राघव मेरे विरह से कष्ट का अनुभव कर रहे हैं।" इस अभिज्ञान से ज्ञान-विरहित मेरे हृदय-स्थल में अधिक-अधिक कष्टानुभूति होने लगी। हाय ! क्या करूँ? जिससे मेरे प्रियतम को जन-वियोग से समुत्पन्न वेदना की अनुभूति न करनी पड़े। हाय ! अपने इस तुच्छ दास पर करुणा-वरुणालय की कितनी कृपा है किन्तु इसके बिलकुल विपरीत मेरा हृदय अपने भगिनि-भाम के स्नेह से शून्य है यदि वास्तविक प्रेम प्रियतम के प्रति प्रेमी के हृदय में हो जाय तो प्रेमास्पद के बिना प्राण धारण करने की शक्ति उसमें कदापि नहीं हो सकती। हाय ! इस दम्भी की क्या दशा होगी ? प्रेम के स्वरूप को प्रेम-मूर्ति मेरे प्राण के प्राण जीवन सर्वस्व सीताकान्त ही जानते हैं। हाय ! अपनी ओर दृष्टिपात करने से तो मुझे अपना स्वरूप कृतघ्नता की कालिमा से ओत-प्रोत दृष्टिगोचर हो रहा है। हाय ! प्रभु-प्रेमी कहलाकर प्रेम-विहीन बने रहना निर्लज्जता के नीर से अपना अभिषेक कराना ही है।

[हाय... ! हाय... !! कहते हुये कुँअर मूर्छित हो जाते हैं। श्री सिद्धिजी प्रकृतिस्थ करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : जीवन-धन ! अपने कार्पण्य का अनुसंधान करना शरणागत-चेतन के स्वरूपानुरूप है किन्तु शरण्य की अमोघ-अनुकम्पा की प्राप्ति हो जाने पर प्रभु से कृतज्ञता प्रकट करने और प्रेम करने के अतिरिक्त आत्मा के अनुकूल अवकाश कहाँ ? अतएव अब प्रभु-पादत्राणों का दर्शन कर हम लोग कृपा-सिन्धु की कृपा का अनुसंधान करें, जिससे आराध्य के गुणगणों के चिन्तन रूपी आहार को पाकर आत्मा अवसादित न होकर प्रियतम की प्रसन्नता के लिये जीवित बनी रहे।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! क्या करूँ? सूत्रधर के संकेत से ही तो कठ पुतली क्रीड़ा करती है। हाँ यह तो बतायें आप ! प्यारे की पनहियाँ प्यारी को कैसे प्राप्त हुईं ? अहो! आप पर हमारे भगिनि-भाम की कृपा का वैलक्षण्य कुछ और ही दृष्टिगोचर होता है जो हमें अप्राप्य है-प्रमाण में पावरियों की प्राप्ति प्रथम आपको ही हुई, मुझे नहीं।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ की अनुपस्थिति में कालक्षेप करने के लिये चित्रा के साथ उद्वेगित-चित्त से कोहवर-कुंज गई थी मैं ! वहाँ जाते ही चित्त पटल पर वैदेही-वल्लभजू की, की हुई लीलायें उदित होने लगीं और उन्हीं में मेरा मन विलीन हो गया। पुनः चित्रा के उपचार करने से सचेत होते ही एक ताखे पर रखी हुई लालजू की पनहियों पर

दृष्टि पड़ी, फिर क्या था ? दर्शन करते ही धन्य और पूर्ण हो गई। पुनः उनका सामयिक सत्कार करके आप श्री के दर्शनार्थ उर की उतावली के साथ यहाँ उठा लाई उन्हें ! प्रभो ! अङ्गी के नेत्र नामक अङ्ग ने किसी उसकी प्रिय वस्तु को देखा, पद, तद्वस्तु के पास प्रस्थान किये और करों ने उठाकर अङ्गी के हृदय में रख दिया उस वस्तु को, तो यह सब वैधानिक क्रिया अङ्गी के लिये ही हुई न कि अङ्ग के लिये।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! सहधर्मिणी के स्वरूपानुरूप ही आपके व्यवहार सदा से होते आये हैं। आप मेरी बहिप्राण के समान संजीवनी–सखी हैं अतएव अपने सुहृद के प्राणों की सुरक्षा–संविधायिनी–सखी का यह कर्त्तव्य मुझे बहुत ही मधुर लगा। आशा करता हूँ कि प्रभु–पाद–पद्मों की पनहियों को प्राप्तकर कुछ भी पाना शेष न रहेगा मुझे।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी सिद्धिजी को गले से लगाकर कृतज्ञता प्रकट करते हुये प्यार करते हैं।]

श्री सिद्धिजी : आर्य ! आप क्या कह रहे हैं ? मैंने क्या किया ? मैं तो आपकी सहज शेष अर्थात् दासी और सहज–भोग्य वस्तु हूँ। आप स्वयं मेरे स्वामी, संभोक्ता और संरक्षक हैं। नाथ का सम्मान व आदर करना मेरे हृदय धन के अप्रतिहत पंचवीरत्व एवं उदार हार्दत्व के अनुरूप है। प्रभो ! अपने आराध्य देव की चरण–दासियों के सम्मानार्थ करणीय–कृत्य के विषय में आपने क्या विचार किया है ? मेरे हृदय की वर्धमान–जिज्ञासा ने प्रियतम से प्रश्न करने के लिये बाध्य कर दिया मुझे ! धृष्टता क्षमा हो नाथ !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अपनी आराध्या को अत्युत्तम–आसन में आसीन कर अहर्निशि–अर्चन करने की अभिलाषा अन्तःकरण में अबाध्य गति से हो रही है, प्रिये ! कहिये आपकी अनुमति क्या है ?

श्री सिद्धिजी : हृदय–हर्ष–वर्धनजू की रुचि ही दासी की सहज रुचि है, नाथ! पुण्य–नक्षत्र के पुनीत दिन में पाँवरियों को प्रतिष्ठा के साथ स्वर्ण–सिंहासन में सविधि पधराकर हम दोनों को आयु पर्यन्त उनकी अर्चा में अनुदिन सप्रेम संलग्न रहना आपकी अनुचरी के अन्तर्जगत का अभिमत है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! प्रेम–पथ के पथिक, प्रिया के प्रियतम के लिये प्रियाजू का सतसंग ही तो पूर्ण–पाथेय है जिसके साहाय्य से परम–पद–प्रतिष्ठित–प्रेमास्पद की प्राप्ति सहज ही में कर सकूँगा मैं ! आपके आप्त–वचनों की मान्यता में मेरे मन ने कभी आना–कानी नहीं की है। जैसे, वर्धमान–वेलि को शाख का सहारा समुन्नतशील बनाने वाला सिद्ध होता है वैसे ही हम अपनी सहधर्मिणी के सहयोग से सत्य की संप्राप्ति कर लेंगे चाहे हम में अल्प–साधन का भी अभाव क्यों न हो, तथ्य–पूर्ण इस वार्ता की अनुभूति मुझे अपनी अर्द्धांगिनी कीं क्रिया–कलापों एवं उपकरण– सामग्रियों द्वारा नित्य–नित्य होती है कि मैं प्रेय से श्रेय की ओर उत्तरोत्तर बढ रहा हूँ।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! अपने आश्रितों को आदर देना आपका सहज स्वभाव है। छोटों पर बड़ों का अत्यधिक स्नेह होना ही तो उनके बड़प्पन का द्योतक है। आप श्री के अङ्गीकार करने से मैं प्राप्तव्य को प्राप्त करने योग्य हो गयी, सत्य हो गई और आपके अनुकूल हो गई। धन्य है कृपासिन्धु की कृपा को जिसने मुझे आपके शय्यासन की अधिकारिणी बनाकर मेरे सौभाग्य को निरतिशय के सिंहासन में संप्रतिष्ठित कर दिया है। मेरे जीवन–धन की सदा जय हो !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आपकी अहं–हीनता के सूर्य ने ही तो आपके आत्म–कमल को विकसित कर विदेह–कुमार के मन–मधुकर को उसका मकरन्द पान करने के लिये संप्रलुब्ध कर दिया है। अतएव आप इसी प्रकार अपने प्रेम–पियूष से मेरा परिपोषण करती हुई, प्रेम–पथ की प्रदर्शिका एवं जीवन संगिनी बनी रहें, यही मात्र कामना है। आपने श्याम–सुन्दर रघुनन्दन की जूतियों का दर्शन कराकर मेरी अधीरता को धीरता के रूप में परिवर्तित कर दिया है। अहो ! मैं अपने अकिंचनत्व, अगतित्व और आर्तित्व के अनुरूप अन्तःकरण से कहता हूँ कि मैं अपने आराध्य का जूती–वरदार हूँ इसलिये प्रभु–पाद–पद्म की पनहियों की सेवा करना केवल मेरा सहज कर्म ही नहीं अपितु परम–पुरुषार्थ होगा। यही मेरी स्वामिनी हैं, इन्हीं की कृपा से मेरी देह यात्रा और आत्म यात्रा का भली भाँति निर्वाह होगा, यही प्रभु–प्रेम की प्रदायिका हैं, यही ज्ञान की आँखें हैं और इन्हीं की कृपा से कृपासिन्धु के समग्र कृपासिन्धु में अवगाहन करने का अत्युत्तम–अधिकारी बन सकूँगा। अस्तु, अब आपके कथनानुसार अवश्य पुष्य–नक्षत्र में श्री रघुनन्दन जी के पाद–त्राणों को सिंहासनासीन कर देना अधिकारी के अनुकूल होगा।

श्री सिद्धिजी : हृदयेश्वर ! मेरे हृदय की खूब जानते हैं अतएव उसके भावों को बार–बार व्यक्त करना, अपने भावनास्पद के समक्ष दम्भ का प्रदर्शन मात्र ही होगा। आप श्री के सुष्टु–विचार आप ही के अनुरूप हैं। अवश्य ही पुष्य के पुनीत–बेला में प्रभु के पद–पाँवरियों की प्रतिष्ठा हो जानी चाहिये। प्रभो ! युगल–किशोर की चर्चा करते–करते तथा रघुनन्दन के पद–त्राणों की प्राप्ति जन्य–हर्ष से अर्धरात्रि व्यतीत हो गई किन्तु समय का पता न लगा। अतएव अब शयन–कक्ष में चलना चाहिये जिससे प्रातःकालीन कैंकर्य में विरोध न उत्पन्न हो। ठीक है न ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : बहुत अच्छा है प्रिये ! विश्राम करना चाहिये ताकि प्रियतम के कैंकर्य में लगी रहने वाली उनकी देह की तथा देह में रहने वाले अन्तर्यामी भगवान को कृशता का दर्शन न करना पडे।

[दोनों शयन–कक्ष की ओर प्रस्थान करते हैं।]

पटाक्षेप

....

पंच चत्वारिंशः दृश्यः ४५

[सपत्नीक श्री लक्ष्मीनिधिजी श्रीरामजी की जूतियों को स्वर्ण–कक्ष के स्वर्ण–सिंहासन में प्रतिष्ठित करके उनकी विस्तृत पूजा में संलग्न हैं। कभी स्वयं छत्र–चमर लेकर दास–दासी की तरह चर्या करते हैं तो कभी दंडवत करते हैं। कभी पद–त्राणों को लेकर शिर में रखकर प्रेम–विभोर बन जाते हैं और अपने अश्रु–जल से उनका अभिषेक करते हैं। इसी क्रम के प्रवाह में निमग्न दम्पत्ति प्रेम की प्रतिमा बने हुये विराज रहे हैं। उत्सव की सहकारी–सामग्रियों का संदर्शन हो रहा है, पंच–ध्वनि गगन में गूंज रही है। समूह नर और गीत गाती हुई नारियों का प्रवेश तथा निर्गमन हो रहा है।.....]

पद : प्रभु पद पाँवरि पूजा आज।

सिद्धि–सदन में श्री लक्ष्मीनिधि, करि रहे लीन्हे सकल समाज।

स्वर्ण सिंहासन में पधराई, षोड़श पूजि सहित सिधि साज।
सकल सिद्धि की वितरन वारी, राम पनहियाँ पावन भ्राज।
छत्र चमर निज कर में धारे, सेवत साश्रु प्रेम के काज।
दान - मान ते विप्रन पूजे, पंचध्वनी रही गगनहिं गाज।
चलहु सहेली कनक कलश शिर, निरखहिं उत्सव तजि के लाज।
हर्षण श्याल-भाम, सिधि-सीता, धनि युग युवराज्ञी युवराज।

[विप्र-साधु और सुर सम्मानित हो रहे हैं, देय-द्रव्यों के ग्रहीता काम-पूर्ण होकर बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं श्री सुनैनाजी सहित श्री सीरध्वजजी महाराज उत्सव में आनन्द विभोर हो रहे हैं। सिद्धि-सदन की शोभा सर्वाङ्गतया सुर सुन्दरियों के भवन को विलज्जित करने वाली है। मालुम पड़ता है कि अष्ट-सिद्धियाँ और नव-निधियाँ परिचारिका का कार्य कर रही हैं। अवनी और आकाश आनन्द की अनुभूति कर रहे हैं। इसी सुख की सुन्दर-बेला में एक मंजूषा लिये हुये दासी का प्रवेश होता है।]

दासी : (प्रणाम करती हुई) श्री मिथिलेश कुमार के साथ श्री स्वामिनी सिद्धि कुँअरिजू के जीवन की जय जयकार।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : कहो दासी ! क्या समाचार है ? तुम्हारे मुख-मंडल की प्रसन्नता के धन का प्रेक्षण करके मेरा मन-मयूर परम प्रहृष्ट होकर नृत्य कर रहा है। कहो यहाँ आने का कोई विशेष प्रयोजन है क्या ? अहो ! श्राव्य को श्रवण करने की उत्कण्ठा मेरे श्रवणों को आतुर बना रही है। अस्तु शीघ्र सुनाओ।

दासी : आर्य ! यह मंजूषा आपके समीप पहुँचाने का ही एक मात्र प्रयोजन था। आपके आनन्द की अतिशयता का निर्माण करने वाली मंजूषा को लेकर आने का सौभाग्य ही मेरे मुख के हर्षोत्फुल्ल बनने का कारण है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : दासी ! मेरे सौभाग्य की जननी यह मंजुल-मंजूषा तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई है ?

दासी : नाथ ! गृह-मंत्रीजी के सेवक के द्वारा मुझे चतुर्थ कक्ष की ड्योढ़ी में आपके पास पहुँचाने के लिये प्राप्त हुई है ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : दासी ! मुझे महान आनन्द की अनुभूति हो रही है। क्या बता सकती हो कि मामकीय पद पर प्रतिष्ठित होने वाली यह मंजूषा किसने और कहाँ से भेजी है।

दासी : देव ! यह मंजूषा आपके हृदय-हरण कौशल-किशोर से प्रेषित कौशल-पुरी से अभी-अभी आई है। निर्विकल्प ज्ञान के द्वारा इसका ग्राह्य ज्ञान आप श्री को स्वयं होगा किन्तु हमारे युवराज महोदय राजनीति की रक्षा करने के लिये किंकरी से विविध विषय के प्रश्न कर रहे हैं। अहो ! प्रश्नों का उत्तर मेरे स्वामी को सुख सम्वर्धक सिद्ध हुआ है, अस्तु मैं कृत-कृत्य हो गई।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : ऐ दासी, तुमने बड़ी प्रियकर वार्ता मुझे सुनाई है अतएव तुम मुझे बड़ी ही प्रिय हो। लो, ये नख-शिखान्त बहुमूल्य वस्त्राभूषण यद्यपि शुभ संदेश की समता का आंशिक मूल्य भी मुझे इनमें परिलक्षित नहीं होता।

दासी : प्रभो ! दासी ने तो अपना कर्तव्य पालन किया है। इसमें कृतज्ञता और पारितोषिक पाने की किंचित कामना दास्य-धर्म को ध्वंस किये बिना न रहेगी। मैं आपकी अनन्य सेविका हूँ और आप मेरे सहज स्वामी हैं इसलिये दासी के स्वरूपानुरूप धर्म के संरक्षक भी आप हैं। मेरी देहयात्रा व आत्म-यात्रा का निर्वाह तो नाथ से ही होता है अतएव अलग से देय-द्रव्य के देने की क्या आवश्यकता है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : दासी ! आत्म-सेविका, स्वामी को सहज ही आत्मप्रिय होती है, अस्तु प्रसन्नता में भरकर उसे अपने समान साज सजाकर सुखी होना स्वामी के स्वामित्व का परिचायक ही नहीं अपितु अपने आत्म-सुख के संविधान के लिये भी है अस्तु तुम मेरी प्रसन्नता के लिये इन वस्त्राभूषणों को ग्रहण करलो।

दासी : अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिये क्या नहीं कर सकती मैं! लीजिये, मैंने अपने नाथ के प्रसाद का प्रसन्नता पूर्वक सादर संग्रह कर लिया। धन्य है लोक प्रियता के चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हमारे युवराज महोदय की महानता को ....।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अच्छा दासी, मंजूषा लाओ। प्रियतम की भेजी हुई वस्तु का दर्शन और स्पर्श हमको इष्ट-प्राप्ति के अनुरूप ही होगा।

दासी : (मंजूषा उठाकर) लीजिये नाथ ! बहुत हल्की मंजूषा है।

(श्री लक्ष्मीनिधिजी मंजूषा को हाथ में लेकर प्रियतम स्पर्श जनित सुख का अनुभव कर प्रेम विभोर हो जाते हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अहो ! प्रियतम की स्पर्श की हुई, वस्तुयें वास्तव में अपने स्पर्श करने वाले प्रेमिक को परमानन्द का विस्तार करने वाली होती हैं।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! मन बड़ी उतावली कर रहा है अतएव उसे प्रोत्साहित करने के लिये मंजूषा को शीघ्र खोलने की कृपा करें आप ! लालची लोचन भी ललचाये हुये निर्निमेष आपके कर-कमलों की चेष्टा को देख रहे हैं। उद्घाटित-मंजूषा से प्रसारित प्रेमानन्द प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा आपके परिकर वृन्द को विभोर बनाये दे रही है। अहो ! इस अनिर्वचनीय आकार वाली मंजूषा जब मन को मुग्ध कर रही है तब इसके उरालय में उपस्थित वस्तु विशेष स्वयं का दर्शन दान देकर लोगों को क्या से क्या कर देगी। आश्चर्य!

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (विनोद में मुस्कुराकर) प्रियतमे ! आप का कहना सर्वथा सत्य है कि सभी सदस्य समुत्सुक हो रहे हैं किन्तु मंजूषा के अन्तर्देश का दर्शन तो विविक्त-देश में ही हमें प्रथम करना है। यह तो केवल हमारे लिये है, ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : (हंसकर, विनोद में) आप औचित्य का अपमान न करके ठीक कब नहीं कहते, नाथ ! मंजूषान्तर्गत वस्तु एकान्त में केवल आपके अनुभव के लिये है, यह मैं मानती हूँ किन्तु अपनी छाया को छोड़कर यदि कहीं निर्जन स्थान में जाने की क्षमता नाथ में हो तो शीघ्र प्रस्थान करने की कृपा हो इसी प्रकार रसना के स्वाद लेने पर अन्तः करण प्रसन्न न होता हो तो आप भी अपनी आत्मा को अनुभव न कराकर अकेली इन्द्रियों के अनुभव कराने में सक्षम हो सकें तो बहुत अच्छा है। अस्तु, अनुभव करने के लिये ठंडे-ठंडे पधारें।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्यारीजू ! असंभव को संभव कैसे किया जा सकता है। छाया शरीर की अनुगामिनी है, वह अनेक यत्न करने पर भी कायानुगमन करने से न रुकेगी।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! आपकी अनुगामिनी सिद्धि कुँअरि भी आपके अनुभव करने के समय ही अनुभवेय तत्व की अनुभूति करेगी, उससे पृथक होकर अनुभव करने का प्रयास आपको मात्र परिश्रम प्रदान करेगा क्योंकि वह आपकी आत्मा है और आप उसके आत्मा हैं, ऐक्य के स्वाभाविक सहजत्व में प्रयत्न करने पर भी पार्थक्य का आना अतीतकाल में भी असंभव है, नाथ !

चित्राजी : (हंसकर) आर्यनन्दन जू व्यतीतकाल में कोई भी खाद्य-वस्तु का उपयोग परिकरों में विभाजित करके ही किये हैं, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे भी। आप श्री का ऐसा ही सहज स्वभाव है अन्यथा हम लोगों के ललचाये हुये लोचनों के दृष्टिपात से दृष्टि-दोष लगने की आशंका की आपत्ति समुपस्थित हो जायगी। मुझे यह मालूम है कि आपका आशय अत्यन्त उदार है, अस्तु, बिना स्वामिनी जी को भोग लगाये पायेंगे ही नहीं।

श्री सिद्धिजी : रस-वर्धनजू ! शीघ्र खोलिये मंजूषा। देखिये, देर न कीजिये हमसे अब नहीं रहा जाता। रस-पान से अतृप्त आँखों की संतृप्ति हमारे स्वामीजू के कर-कमलों में है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (हंसकर) अच्छा, राजकुमारी जू की बात न मानने में भय भी तो है। सर्व भावेन, सर्व प्रकारेण सर्वदा सर्वान्नों को परमात्मार्पित करके उस रस सिक्त प्रसाद को प्रेम से परोस-परोस मुझे पवाकर रसमय बनाना एवं प्रपुष्ट करना चित्राजी की स्वामिनीजू का काम है। अस्तु, आपको रोष उत्पन्न कर सब दिन मुझे भूखे मरना पसन्द नहीं है।

श्री सिद्धिजी : देखिये, आप बातों में टालकर मुझे ललचा रहे हैं।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : भूख बढ़ जाने पर भोजन में महान स्वाद आता है, प्रिये ! अच्छा, अभी खोलता हूँ।

श्री सिद्धिजी : अभी-अभी कह रहे हैं आप ! किन्तु कर-कमलों से मंजूषा की घुण्डी भी नहीं पकड़े । (प्राणनाथ के कर-कमलों को पकड़कर मंजूषा को घुण्डी में लगाती हैं।) शीघ्रातिशीघ्र खोलने की कृपा करें, आपको मुझे ललचाने में मजा आ रहा है क्या ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (मंजूषा को खोलकर कागजों से आच्छादित एक वस्तु को देखते हैं...)

[श्री सिद्धिजी, चित्राजी तथा सब सखियाँ झुक-झुककर उस वस्तु का अवलोकन करने के लिये समातुर हो उठी हैं।]

प्रियतमा की कोई प्यारी वस्तु ही प्रतीत हो रही है इसमें। इसीलिये इतनी आतुरता का अवतरण प्रियाजू के हृदय-प्राङ्गण में प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है।

श्री सिद्धिजी : हे हृदय-हर्ष-वर्धनजू ! दीजिये इस कागज के आवरण को मैं शीघ्र पृथक कर दूँ। आप श्री को जिससे अधिक कष्ट न सहना पड़े।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (स्वयं आवरण दूर करने की चेष्टा करते हुये) इसमें कौन परिश्रम है, प्रियाजू।

[मंजूषा के अन्तर्गत वस्तु का आवरण हटाकर, रत्नों से सुसज्जित स्वर्णमय चौकटे के भीतर भानुकुल-कमल-दिवाकर के दिव्य-चित्र का

दर्शन करते ही आनन्द-मूर्छा में अस्त हो जाते हैं। तदोपरि क्रमशः सिद्धि कुँअरि और चित्रादि सखियाँ स्मृति शून्य हो जाती हैं। पुनः श्री लक्ष्मीनिधिजी श्री सिद्धिजी व सम्पूर्ण सखियाँ क्रमशः प्रकृतिस्थ हो जाती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (श्रीरामजी के चित्र को साश्रु अवलोकन करते हुये) अहो! धन्य है, चित्रकार की कला-कुशलता को जिसने कलाधर कौशल-किशोर के कलात्मक चार्वाङ्गों को चारुतया चित्रण चमत्कार पूर्ण अपनी चतुरता का परिचय दिया है। प्रियतमे! कृपा का रहस्य कृपा सिन्धु की कृपा से ही समझा जा सकता है। अहा! अपनी अनुपस्थिति में अपनी संयोग-दशा के समान संस्पर्श और संदर्शन का अनुभव कराने के लिये लक्ष्मणाग्रज रघुनन्दन ने अपने स्वरूप से अभिन्नता का आभास कराता हुआ कैसा चारुतम-चित्र भेजा है। अहो ! नीलकान्त-मणि के समान प्रदीप्त नील वर्ण तथा वक्षस्थल पर झूलती हुई अनमोल मणियों की माला हाथ में रत्नों का गुच्छा, वाम पार्श्व में सलज्ज-भाव से श्री सीताजी अवस्थित हैं और दाहिने ओर धनुर्वाण रखे हैं, अरे ये एक चित्र न होकर श्री सीता समेत दूलह वेष में साक्षात् सीताकान्त बैठे हुये हैं।

[कहकर श्री लक्ष्मीनिधिजी दर्शन-स्पर्शन करके तत्वसुख की अनुभूति करते हैं और चित्रपट का आलिंगन कर-करके अपने को स्मृति-हीन बना देते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) आनन्द-मूर्ते ! आप अपनी अनुजा और उनके आत्म-देव की प्रतिमा के प्रेक्षण से प्रेम के प्रवाह में प्रवाहित होकर आत्म-विस्मृति की शय्या में शयन कर गये तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि आप श्री अपने प्रियतम की स्मृति का स्पर्श पाते ही अपने को खो बैठते हैं। अहो ! ऐसे चित्तापहारी चारु-चित्त का चमत्कार पूर्ण चित्रण करने वाला लोकातीत ही प्रतीत होता है। विधि को विस्मय उत्पादन करके दाँतों तले अँगुली दबाने के लिये बाध्य करने की शक्ति से सम्पन्न चारुतम-चित्र देखते ही बनता है। देखते-देखते यह भान भली प्रकार भुलाया जा सकता है कि यह चित्र है। चित्त में यह सत्य समा जाता है कि ये सत्य-संकल्पी सीताकान्त ही हैं। वास्तव में चित्र क्या ? यह तो मौन-व्रत को धारण किये हुये श्री सीता समन्वित श्याम सुन्दर रघुनन्दन ही हैं।

चित्राजी : राम-प्रिये ! वैदेही एवं वैदेही वल्लभजू की शरीर-सम्पति का सम्पूर्णतया अलौकिक आभास भी इस मनोरम चित्र में हो रहा है। अहा ! लग रहा है कि सीता सुन्दरी के साक्षात सीताकान्त ही विराजे हुये हैं। चित्र की सत्यता चित्त से न जाने कहाँ प्रस्थान कर जाती है।

श्री सिद्धिजी : अहो ! सौन्दर्य-सिन्धु और माधुर्य-महोदधि का समग्र संदर्शन मन में परम प्रसन्नता की समनुभूति कराने में सक्षम हो रहा है।

[दूसरे ही क्षण श्री सिद्धिजी प्रेम मगन हो पद गाने लगती हैं।]

पद : सीय सुंदरि श्रीराम हमारे।
कोटि काम रति छबी बिखेरत, आये बहुत दिनन में प्यारे।
मन्द-मन्द मुसकाय के चितवत, हर्षण सिद्धि हृदय को हारे।
उर-बिच आनँद उर्मि को उमड़त, पै नहिं नेकहु बोल निकारे।
हाय सिद्धि की पाप प्रबलता, अघ-नाशन हिय रोष प्रसारे।

मेरे प्यारे ! चिर दिनों से तृषित मेरी अतृप्त आँखों को संतृप्ति प्रदान करने के लिये आप आज अपनी दासी के समक्ष पधार गये हैं, यह औदार्य पूर्ण आपकी अनुकम्पा-देवी का विशिष्ट वैभव है। श्याल-सरहज के प्रति अपने हार्द-स्नेह का प्रत्यक्ष परिमार्जित प्रमाण प्रकटकर आपने उसे हमारे नेत्रों का विषय बना दिया है। हाय ! मन-मोहन के शत-शशिविजित-वरानन से मन-मोहिनी मधुर मुसकान की सुधा पूर्ण-किरण-कान्ति बिखर-बिखरकर जन-मानस में विस्तृत आनन्द की उर्मियों का आन्दोलन तो कर रही है किन्तु अरुणिम-अधर-पल्लवों को चंचल बनाते हुये अमृतमय शब्दों की पयस्विनी का स्रोत हमारे श्रवण-पुटों की ओर संप्रवाहित नहीं हो रहा है। मेरे आराध्य ! क्या दासी के अमित अपराधों का निरीक्षण करके प्रियाजू के समेत मौन व्रत का संकल्प ले लिये हैं, मैं आप श्री के चरणों की शरण पड़ी हूँ। हे अघनाशन ! मेरे असंख्य अघों को क्षमा करके एक बार चित्तापहारी चितवनि से सस्नेह मेरी ओर देखते हुये मधुर मुसकान के साथ मधुर बोलों का घोल मेरे प्यासे कर्णों में उड़ेल दें।

[श्री सिद्धिजी भूमि में शिर रखकर अपराध क्षमापन करवाती हुई रो-रोकर स्मृति-हीन हो जाती हैं।]

चित्राजी : (प्रकृतिस्थ करके) प्रेम-पंडिते ! चित्रकार की सर्वाङ्गीण-कला-कुशलता तथा आप श्री के प्रेम-वैलक्षण्य का सामन्जस्य सम्प्रति सराहनीय है। कलाकार की कला का नैपुण्य, चित्रपट में साक्षात् संदर्शन का संमोह समुत्पन्न करता है और आप श्री चित्र को देखने मात्र से प्रतिबिम्ब को ही बिम्ब समझकर तदनुसार चेष्टाओं का संप्रदर्शन करा रही हैं प्रत्येक का चित्त प्रीतम के चित्त का अनुवर्तन करके अपनी वृत्ति का अनुपमेय आदर्श उपस्थित कर अपना वैशिष्ट्य अपने आप अर्जित कर लिया है जिसमें आपके परिकर-वृन्द का परमानन्द सर्वभावेन सन्निहित है। आपके सहचरि-पद में प्रतिष्ठित होकर मैं तो कृतकृत्य हो गई। धन्य है आपके कायिक, वाचिक, मानसिक और आध्यात्मिक-वैभव को और धन्य है चित्रकार की चित्रकारी को जिसमें उसकी चित्त-वृत्ति का उत्कृष्टतम उदाहरण उपस्थित है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : चित्राजी ! आपके वचन सर्वथा सत्य से ओत-प्रोत हैं। सौन्दर्य-सुधा का सार और अतिशय मनोज्ञ यह चारुतम-चित्र श्याम सुन्दर रघुनन्दन ने हमारी प्रियतमाजू के प्रेम-बंधन में बंधने के कारण ही भेजा है। अहा ! इसके निर्माण में रघुकुल-भूषण को भूख-प्यास का भी स्मरण न रहा होगा। अहो ! हमारे सर्वस्व कौशल-किशोर के हृदय-गगन में प्रेम का प्रकाश-पुन्ज सूर्य अहर्निशि उदित बना रहता है जहाँ मोह-रात्रि का नाम भी नहीं रहता। प्रेमियों के प्रेम-प्रवर्धन एवं प्रकाशन के लिये कितना औदार्यपूर्ण यह कार्य है प्रेमास्पद का। अहो ! त्रिभुवन-सुन्दरी चित्र की छबि को देखकर किस मानव का मन आकर्षित न हो जायगा। जानकी-जीवन की कृपा से नियोजित प्रियतम के चित्र का अप्रतिम-सौन्दर्य अपने श्याल के सुख सम्वर्धन के लिये विनिर्मित हुआ है किन्तु इसके विपरीत हमारा हृदय कितना कृतघ्न, कृपण और कठोर है। हाय....(प्रेम विभोर हो जाते हैं।)

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ करके) प्राणनाथ ! श्याल-भाम की पारस्परिक प्रीति अवाङ्ग मनसागोचर है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नेह-नदी के युगल-किनारों को

प्रेम–पाथ से परिपूर्ण संप्रेक्षण करके उसमें उतरकर पार जाने का साहस नहीं करते तो इतर प्राणियों का इस विषय का आलोचक बनकर आलोचना करना अपने मस्तिष्क का व्यर्थ मंथन करना है तथा श्री सरस्वतीजी को परिश्रम कराना मात्र है। प्रभो ! अपने प्रियतम से प्रेषित प्यारे के इस प्रतिबिम्ब को पूजा–गृह में सिंहासनासीन कर अपने ललचाये लोचनों को उनका आहार प्रदान करते रहें एवं स्वबुद्धि के सत प्रयोग द्वारा अकिंचनत्व का अवलम्बन कर आराध्य की अलौकिक कृपा का अनुसंधान करते रहें यही मेरी प्रार्थना, आशा व आकांक्षा है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! युगल किशोर के चित्रपट को आपके कथनानुसार यज्ञ–कुंज में प्रतिष्ठित कर दर्शनानन्द से हम दोनों श्री रामजी को समर्पित स्व–शरीर समुदाय की सुरक्षा स्वामी के सेवार्थ करते रहें, आपके वचन आवश्यक, अत्युत्तम, आह्लादकारी और आदरणीय हैं।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! प्रातिभ–ज्ञान के समान प्रतिभा पूर्ण चित्र को यज्ञ-कुंज ले चलो।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! आपकी आज्ञा का अनुवर्तन अभी–अभी कर रही हूँ। आप युगल मूर्ति पधारें।

[सभी चित्रपट को लेकर यज्ञ–कुंज की ओर प्रस्थित होते हैं।]

पटाक्षेप

- - - - - -

षट चत्वारिंशः दृश्यः ४६

[श्री सिद्धिजी, श्री लक्ष्मीनिधिजी के साथ अन्तःपुर में विराज रही हैं। बैठने की गद्दी कामदार और कोमल है, पीछे तथा पार्श्व में टिकने के लिये मसनद रखे हैं जो जरी से जड़े लाल और हरे मखमल से बने हैं। सामने सेवा साज सुशोभित है। चित्रादि सखियाँ श्री सीतारामजी के मधुर–मधुर चरित्रों को सुना–सुनाकर दम्पति का मुखोल्लास विवर्धन कर रही हैं।]

चित्राजी का तंत्री के साथ गायन :

पद : रोम रोम में रमे हमारे, नृपति नन्दिनी, नन्दनजी ।
बने हुये दोनों दृग तारे, लगते शीतल चन्दन जी ।
नई–नई लीला को करते, हृदय बीच जग वन्दन जी ।
मन्द – मन्द मुसकान माधुरी, रहे बिखेर स्वच्छन्दन जी।।
अपनी चितवनि से वश करते, रघुवर सुत दशस्यन्दन जी ।
कोटि काम के दर्प को दलते, करें हर्ष अभिनन्दन जी ।
भव–रस का सब भान भगाये, नष्ट किये सब द्वन्दन जी ।
सिद्धि–सदन के अतिथि प्राण–प्रिय, धन्य–धन्य सुख कन्दन जी ।

अहो ! श्याम सुन्दर रघुनन्दन वास्तव में प्रेम–पारखी हैं। उनका प्रेम विज्ञान विस्तृत–वसुन्धरा तथा आकाश से भी महान है। मिथिला-वासियों के प्रति कहना ही क्या

हैं? मिथिला नाम में ही उनकी इतनी अत्यधिक अनुरक्ति है जितना अनुराग हमारे हृदय में हृदय-हरण के प्रति नहीं है। श्याल तथा श्याल-वधू पर वे रीझे रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अहा हा ! श्रीराम का मानवोचित चरित्र का चित्रण मानव-जीवन की कहानी का दिव्य-दृश्य है जिसके प्रति पद-पद में ऐसा लगता है कि वह प्रेम-रस से अनन्त बार परिशोधित किया गया है।

श्री सिद्धिजी : प्रभो ! चित्रा का कहना सर्वथा सार-गर्भित है। आनन्द-कन्द अवनिप-कुमार का शील-स्वभाव अप्रतिम एवं अवर्णनीय है। प्रेम की वे प्रतिमा ही नहीं हैं अपितु उनके आहार और व्यवहार के अलंकार भी परम विशुद्ध प्रेम के ही प्रतीक हैं। रघुनन्दन जू के दृष्टि-पथ में पड़ने वाले जड़-जीव भी चैतन्य की तरह प्रेम से प्रभावित हुये बिना नहीं रहते। अहा! पूर्ण काम श्रीराम की अहैतुकी अनुरक्ति अपने श्याल-सरहज पर अपरिसीम और अनिर्वचनीय है जिसकी स्मृति चित्त-पटल पर उदित होते ही चित्त चन्चरीक चित्त-चोर के चरण-कमल का मकरन्द पानकर-करके चित्त संज्ञा को सर्वथा विनष्ट कर देता है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! अवधेश कुमार के अनुपमेय औदार्य ने ही मुझको अपना कहने का अवसर अपने भाम-भगिनी को दिया है अन्यथा अपना भाग्य कहाँ ऐसा था कि उन युगल-मूर्तियों का प्रेम-भाजन बनूँ ।

श्री सिद्धिजी : जीवन सर्वस्व ! रह-रहकर रघुवर के चारु-चरित्र स्मृति की जवनिका में चित्रित होते रहते हैं जिनका स्मरण वैदेही-वल्लभ के शरीर-वैभव, गुण-वैभव और स्वभाव-वैभव की ओर आकृष्ट ही नहीं करता अपितु आसक्ति को समुन्नतशील बना देता है। श्रीराज किशोरीजी के विषय में कहना ही क्या है ? उनके कृपा, करुणा और वात्सल्यादि गुणों का विचार तथा सौन्दर्यादि शरीर सम्पत्तियों का दर्शन करने पर उन्हें श्याम सुन्दर से श्रेष्ठ कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी। अहो ! मेरी मन-मोहिनी, मैथिली की झाँकी को झाँककर मदन-मद-मर्दनकारी मन-मोहन का मन अपने अधीन न रहा, वह अपना गर्व गमाकर कनकोज्वला के कान्ति-प्रदेश के किसी भाग में विलीन हो जाने का अनुष्ठान सदा के लिये ले लिया है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्राणवल्लभे ! श्रुति-वन्दिता सियाजू में जो दर्शन होता है, वह श्रीराम जी के ही वैभव का विस्मयोत्पादक विकास है एवं श्री रामजी में जिन-जिन सम्पत्तियों का संदर्शन होता है, उन सब में श्री सीता जू की ही सारतम सम्पत्ति संदर्शित हो रही हैं क्योंकि शक्ति और शक्तिमान में सदा भेद का अभाव है। हाँ, ऐश्वर्य को भूलकर माधुर्य-महोदधि में जब मेरा मन-मीन किलोल करने लगता है तब आपके वचनों का केवल आदर ही नहीं करता अपितु ऐसा मानता हूँ कि आप भी मेरी मान्यता को मान्यता दे रही हैं। हमने अपनी अम्बाजी के मुख से सुना है कि, "कौशल्या अम्बा अपने लाड़िले लाल के अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्य के सरतम सागर को प्राप्तकर कभी-कभी गर्वोक्ति कर बैठती थीं। कहती थीं मेरे लाल के समान सुन्दरी लली का जगत में जन्म होना असंभव है। हाय ! पुत्र के अनुरूप पुत्रवधू न मिलेगी।" किन्तु जब हमारी लाड़िलीजू के मुख का दर्शन उन्हें मिला तब सारा का सारा गर्व उतर गया। पुत्र-वधू के सौन्दर्य के सामने पुत्र का सौन्दर्य अंश प्रतीत हुआ तब पुत्र का हाथ पकड़कर वधू को मुख-दिखाई नेग में दे दिया उन्होंने।

श्री सिद्धिजी : प्राणधन ! हम लोग तो मधुर रस के ही रसिक हैं न ? अपवाद में यह बात सत्य है कि मधुर रस की मधुरता में अधिक स्वारस्य लाने के लिये कभी-कभी ऐश्वर्य की चटनी को भी जीभ से चाट लिया करते हैं। अतएव आप श्री का, ऐश्वर्य-दृष्टि से दोनों में एकत्व का दर्शन करके दार्शनिक वचनों से मुझे समझाना औचित्यानुकूल ही है क्योंकि माहात्म्य-विस्मृति का अपवाद प्रेमियों के स्वरूपानुरूप नहीं होता। दार्शनिक-दृष्टि से संवित् संधिनी और आह्लादिनी शक्ति त्रय के ज्ञान से जो भाव विमल बुद्धि के दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है उस ब्रह्म-सत्ता सामान्य अर्थात् उस अखण्ड सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म-भाव को ही सीता तत्व कहते हैं और उपर्युक्त शक्ति त्रय में रमे हुये एक रस रूप परम तत्व के ज्ञान से जो भाव योगियों के चित्त को रमाने वाला सूक्ष्म-बुद्धि के दर्श में प्रतिफलित होता है, उस अखण्ड, अनन्त, सच्चिदानन्दात्मक-ब्रह्म भाव को राम कहते हैं। विशुद्ध बुद्धि के विमर्श से भली-भाँति बोध हो जाता है कि एक ही तत्व को राम और सीता कहते हैं। जैसे दग्धक-देवता और दाहिका शक्ति एक ही अभिन्न तत्व के दो नाम हैं, अस्तु, आपकी अभिन्न दर्शनात्मिका बुद्धि की जय हो जो युगल उपासकों को अपने उपास्य देव में भेद का दर्शन करने नहीं देती !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : आर्ये ! आर्यनन्दन रघुनन्दन के हृदय में आपका निवास है, इतना ही नहीं, आप उनकी हृदय हैं अतएव रसिक शिरोमणि राम के रसमय हृदय के अनुसार ही आपका सर्वाङ्गीण निर्माण है जिसमें रस और रसिकता का स्रोत सर्वदा निर्झरित होता रहता है, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ। श्री राघवेन्द्रजू ने स्वयं मुझसे एकान्त में वार्तालाप करते समय कहा था, "श्री सिद्धि कुँअरिजी मुझे अपनी आत्मा से अभिन्न प्रतीत होती हैं, अस्तु, उनके प्रति प्राणाधिक प्रियता का प्रभाव मेरे मन में प्रतिभासित हो रहा है, जिसके कारण मेरा मन मुझे छोड़कर सदा श्रीधर कुमारी के समीप विश्राम किया करता है"। (सुनकर सिद्धिजी प्रेम-विभोर हो जाती हैं।)

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ होकर) अवश्यमेव कौशल्यानन्द वर्धनजू की अत्यधिक कृपा आप की किंकरी पर है किन्तु उस कृपा के वरण करने का कारण मेरी कृपा-पात्रता नहीं है अपितु उसका मूल कारण आपसे मेरा सम्बन्ध है, अर्थात् आप श्री के पत्नीत्व पद में प्रतिष्ठित होने से ही युगल-किशोर की कृपा का दर्शन कर रही हूँ मैं। अपने पति-परमेश्वर के श्री चरणों में कृतज्ञता के प्रमाण में प्रणाम कर रही है, दासी !

[सिद्धिजी सस्नेह प्रणाम करती हैं, श्री लक्ष्मीनिधिजी उठाकर उन्हें गले से लगा लेते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आपके हृदगत-भावों की सूक्ष्मता सर्वसाधारण के समझने का विषय नहीं है। आपके इन्हीं भावों से मेरे हार्द-भाव हरे-भरे और अनुप्राणित रहते हैं। मेरा यह अनुभूत विषय है कि भाव के वन में बिहार करते समय आपके भावों के संग का शीतल, मन्द, सुगन्धित-समीर मेरे तन-मन-बुद्धि और आत्मा को आनन्द में आत्मसात कर देता है। श्री रघुवंश-विभूषण राम ने मुझसे एक दिन अपने श्री मुख से यह कहा था, "सखे! आपका भाग्योदयार्क श्री सिद्धि कुँअरिजी के रूप में अवनि मंडल को प्रकाशित कर रहा है।" उत्तर में मैंने कहा, "यह आपका प्रसाद है जो आप श्री की अहैतुकी-कृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण है अन्यथा परमार्थ-पथ की प्रदर्शिका प्रेमिका को पत्नी के रूप में

मैं कहाँ पा सकता था।" प्राण-बल्लभे ! बात भी यथार्थ और अन्तःकरण के सत्य से संशोधित है। आप में अत्यधिक अपनी आसक्ति एवं प्रीति होने का कारण अन्वेषण करने पर प्रभु प्रसाद की महत्ता एवं तदीयत्व ही सिद्ध होता है।

श्री सिद्धिजी : मेरे मानद ! श्याल-भाम की भावना से जब अचित, चैतन्य, मृत, अमृत और मशक, ब्रह्मा के रूप में परिणत हो सकता है, तब दासी में आपके अनुभवानन्द के लिये अनुभवेय गुणों का उदय हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? प्रभो ! दासी के समीप न मैं है, न मेरा, यदि कुछ है तो आप और आपका। खैर, जाने दें इन बातों को। अब यह बतलाने की कृपा करें, कि मेरे ननदोई मेरे विषय में कुछ और आपसे कहते थे ? क्योंकि एक मन के दो मनीषियों के बीच की हुई चर्चा, तीसरी चर्चा के विषय समीपी स्वव्यक्ति के व्यक्तित्व की परिचायिका होती है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) प्राण प्रिये ! क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता जब मैं श्रीरामजी के साथ रथ में बैठ कर "श्री" को पहुँचाने जा रहा था तब मार्ग में श्यामसुन्दर की मुख-मुद्रा मुझे कुछ चिंतित सी दीख पड़ी। दूसरे ही क्षण अकस्मात उनके श्री मुख से "हा सिद्धि कुँअरि" शब्द निकल पड़ा। प्रेम के सभी सात्विक-चिन्हों का एक साथ उदयीकरण हो गया और वे रथ में ही गिर पड़े। मैंने अपने अंक में लेकर सामायिक-उपचार के द्वारा प्रकृतिस्थ किया किन्तु पुनः राजिव लोचन अपने नीरज-नयनों से नीर निस्सरण करते हुये हिचकियाँ भर-भरके "हा सिद्धि कुँअरि" कहने लगे। मेरे समझाने से धैर्य धारणकर कुछ देर में बोले कि आप यदि मुझसे मिलना चाहें तो हमारी सरहज के हृदय में हमारा दर्शन, स्पर्शन करके तज्जनित आनन्द का अनुभव कर लिया करेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि आप अपने ननदोई को आत्माधिक प्रिय हैं तथा निरन्तर उनका निवास आपके हृद्देश में है।

[सुनते ही सिद्धिजी प्रेम मूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ करते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ होकर) प्राणनाथ ! चन्द्र के साथ चन्द्रिका का तथा भास्कर भगवान के साथ भानु-प्रभा का समादर होना सभी सज्जनों को मान्य है अतएव आप श्री से अविनाभावी सम्बन्ध होने से दासी को श्रीरामजी की कृपा एवं उनका स्नेह आपके समान पाना आपकी अनन्या के और उनके अनुरूप ही है क्योंकि तदीयत्वानुराग में ही प्रेमी और प्रेमास्पद के प्रेम की पर्यवसिति शास्त्र स्वीकार करते हैं। श्रीरामजी जिस प्रकार आपके अनुराग में आत्म-विभोर बने रहते हैं, उस प्रकार उनके हार्द-भाव का भेद उनकी ही कृपा से दासी को परिज्ञान है। श्याल-भाम की प्रीति विधि-हरि-हर की बुद्धि का विषय नहीं बना सकती। वह तो आप दोनों की आत्मा के अनुभव प्रदेश में विहार करने वाली है आपके पारस्परिक-प्रेम का प्रांशिक प्रकाश बड़े-बड़े ब्रह्मविद-वरिष्ठों के ब्रह्मज्ञान को प्रेम का रूप प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ है, यह वार्ता सभी सुर-नर-मुनि मंडलियों को मान्य है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे आनन्द-वर्धिनी ! अपने श्याल के प्रति श्याम सुन्दर का अनुराग जैसा है, वैसा अभिज्ञान ही केवल नहीं प्रत्युत वह आपके अनुभव में भी आता है। अतएव आनन्द कन्द के अन्तःकरण में अपना कैसा स्थान है, आप अपनी अनुभूति के

अनुसार वर्णन करके हृदय में आह्लाद का संचार करें। क्योंकि आह्लादिनी शक्ति की अनुकूल कृपा के अतिरेक से ही अलौकिक आनन्द की अनुभूति जीव के अन्तःकरण में होती है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! एक दिन श्याम सुन्दर रघुनन्दन अपनी मन–मोहिनी मधुर मुसकान से मन मुग्ध करते हुये मेरे समीप मेरे ही अन्तःकक्ष में विराज रहे थे। सम्मुख आप श्री का चित–चोरक चित्र सुवर्ण भीति पर टंगा था, रससिक्त प्रेम पूर्ण बातें करते–करते अकस्मात मन–मोहनजू की दृष्टि मन–मोहक चित्र पर ज्यों ही पड़ी त्यों ही अधूरी वार्ता को जहाँ की तहाँ छोड़कर कोटि–कोटि कन्दर्प–दल–दलनहारी आपके भाम अपने श्याल के चित्रित प्रतिबिम्ब की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। कहाँ मैं, कहाँ वार्ता और कहाँ स्वयं का ज्ञान, सब खोकर मधुर–मधुर बातें करने लगे। वे बातें इस प्रकार हैं, "सखे ! आपका उतनी दूर बैठना मुझे असह्य है। आइये, आइये शीघ्र आइये। हृदय से लगकर अपने आत्मसखा को सुख के सिन्धु में समाविष्ट कराइये।हाय! मेरा हृदय अधीर हो रहा है और आप मन्द–मन्द मुस्करा कर मेरी अवहेलना कर रहे हैं। हाय ! बोलते भी नहीं, अत्यन्त कोमल आपका स्वभाव आज निष्ठुरता की सीमा में संप्रवेश कर रहा है। हाय हृदय छटपटा रहा है। हाय ! क्या करूँ? हाय ! मित्र का मिलन ही तो आनन्द है। अस्तु, उसकी अप्राप्य अवस्था में मैं शोक–सिन्धु में निमज्जन कर रहा हूँ । आपको अपने भाम की भावना को अभाव की अग्नि में भस्म नहीं करना चाहिये। हाय... मेरे दैन्य को देखकर भी आपका दयालु हृदय द्रवित नहीं हो रहा है। हाय ! यह सब मेरे कर्मों का संस्कार है।"

(हाय ! हाय ! कहकर रोते हुये श्रीरामजी मूर्छित हो जाते हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) पुनः क्या हुआ प्रिये ! श्यामसुन्दर को उपचार द्वारा आपने शीघ्र प्रकृतिस्थ किया या नहीं ?

श्री सिद्धिजी : जीवन–सर्वस्व ! अनुचरी ने अपने अंक में उनके शिर को लेकर अश्रु–प्रोक्षण करके अनेक उपचारों द्वारा अपने ननदोई को प्रकृतिस्थ कर दिया। तदोपरान्त आपके अभ्युदय की कामना करते हुये उन्होंने मुझसे कहा कि "हे कुँअर–वल्लभे. ! मिथिलेश कुँआर मेरी आत्मा है और मैं उनकी आत्मा हूँ। हम एक–दूसरे के प्राण हैं, सर्वस्व हैं। हम दोनों का जीवन परस्पर के सुख संवर्धन के लिये है। अतएव आप अपने पति–परमेश्वर को मेरा साक्षात् स्वरूप समझेंगी। सम्बन्ध के संसार में रहकर स्वधर्मानुसार शास्त्रानुमोदित भव्य व्यवहार करना आराध्य की आराधना है जो भाव–जगत का अविरोधक है ।"

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (प्रेम–विभोर होकर) हाय ! सखे ! मैं आपके बिना जी रहा हूँ। हाय ! हाय ! आपके हार्द–स्नेह की तुलना में मेरे हृदय में आपके प्रति कुछ भी स्नेह नहीं है। हाय। क्या करूँ? एक बार प्यारे से मिल जाता तो फिर पृथक होने का नाम न लेता। हाय ! हृदय कसक से कुरेदा जा रहा है किन्तु धैर्य में हिमालय ही प्रतीत हो रहा है।

[हाय ! हाय ! कहते हुये श्री लक्ष्मीनिधिजी मूर्छित हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) प्राणधन ! रात्रि बहुत व्यतीत हो गई है। अस्तु, विश्राम की बेला का बहुत अतिक्रमण न हो जिससे शरीर शिथिल होकर भगवत–कैंकर्य से मुख न मोड़े। ठीक है न ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! मन को विश्राम न मिलने से तन को विश्रांति अप्राप्य ही रहती है किन्तु आपके वचनों का आदर करना मुझे सर्वदा पथ्यकर प्रतीत हुआ है अतएव शयन-कक्ष में अवश्य ही चलना चाहिये।

[दम्पति का शयन-कक्ष की ओर प्रस्थान]

पटाक्षेप

सप्त चत्वारिंशः दृश्य ४७

[रात्रि का प्रवेश हो गया है, निशानाथ निर्मल आकाश में तारागणों के बीच अपनी शुभ्र जोत्स्ना से जगत को जीवन-जड़ी के समान प्रिय कर प्रतीत हो रहे हैं। श्रीसिद्धि कुँअरि जी अपनी सखियों से समावृत होकर अन्तःपुर के आँगन में आसनासीन हैं। श्री राजकिशोरीजू तथा श्री नरपति-नन्दनजू के स्वभाव की चर्चा करती हुई अपने प्राणवल्लभ श्रीलक्ष्मीनिधिजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। विलम्ब हो जाने के कारण अधीरता के साथ श्री चित्रा जी से कहती हैं।]

पद : सखि मिथिलेश कुमार न आये।
गये रहे निज मातु भवन में, विरह के सिन्धु समाये।
भाम-भगिनी की कथा श्रवण करि, तहँ होइ हैं मुरझाये।
विरह-बधिक के बाण के मारे, जियब कठिन जग जाये।
हाय सिद्धि को स्वामि बिना सब, जियरा देत जराये।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! क्या कारण है, अभी तक अम्बाजी के अयन से प्राणधन नहीं पधारे। हाय ! इस समय वे श्री राजकिशोरीजू व श्री रामजी के विरह-वह्नि में झुलस रहे हैं। नियति है कि युगल किशोर के विरही भक्तों को प्रारम्भ से अवसान पर्यन्त विविध वेषों में विरह की व्यथा का प्रदर्शन जीवन में होता रहता है। हाय ! इस विडम्बना के अनुसार कहीं किशोरीजू के चारु-चरित्रों का चिन्तन करके प्राणनाथ मूर्छित न पड़े हों। हाय ! क्या करूँ धैर्य खोया सा जा रहा है, बुद्धि को कुछ सूझ नहीं रहा है किन्तु साथ ही चित्त में हर्ष का उद्रेक हो रहा है और शुभ अंगों में स्फूरणा हो रही है।

चित्राजी : पति-परायणे ! विदेह-वंश-विभूषण का प्रभु-प्रेम अनिर्वचनीय है, उनके हृदयाकाश में उदित प्रेम भास्कर को कुटिल-कामना का राहु त्रिकाल में कलंकित करने की सामर्थ्य नहीं रखता। उनका प्रेम-प्रताप जेष्ठमास की मध्यान्ह-बेला के समान तप रहा है जिससे उनकी देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि संतप्त और विकल हो उठी है। इस तपन का ताप श्रीराम-घनश्याम के दर्शन की वर्षा की झड़ी लगने से ही शान्त हो सकता है। अन्योपाय सब अपाय में परिवर्तित होकर परिश्रम-मात्र फल प्रदान करेंगे, देवि !

श्री सिद्धिजी : सहेली ! प्राणनाथ का विकसित मुखाम्भोज ही मेरा परमप्राप्य सुख है। उसके किंचित संकुचित होने से हृदय हहरने लगता है। अम्बाजी के श्री मुख से मैंने सुना है कि अब वह समय सन्निकट है जब कुँअर को श्री अयोध्या धाम किशोरीजू को

बुलाने के लिये भेजेंगी वे। सुनकर मेरा हृदय हर्षित हो उठा कि अब हमारे जीवन–सर्वस्व के वियोग–जन्य क्लेश के अस्तित्व का आभास अस्त होकर स्वयं संयोग–सुख के स्वरूप में परिवर्तित हो जायगा। विरह–दुःख के पंक में आकण्ठ–मग्न प्राणधन को सबल–बाहुओं का सहारा देकर श्याम सुन्दर उबार लेंगे, इसमें संदेह नहीं स्वप्न में युगल नरपति–नन्दनों की भेंट आज मेरे अन्तःकरण को आनन्द के हिंडोरे में झुलाकर परमानन्द की अनुभूति करा रही है, अस्तु अब असंशयात्मा होकर प्राणनाथ के मंगल की कामना करती हूँ।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! आप श्री के मुख से यह सुख संवाद सुनकर चित्त चैतन्य हो गया। ईश्वर कृपा करें, श्याल–भाम के समागम का सिन्धु अपनी उर्मियों से हम लोगों के हृदय–तट को शीघ्रातिशीघ्र संप्लावित करके शीतल बना दे।

[इतने में कर–बद्ध मुद्रा में दासी का प्रवेश

दासी : श्री स्वामिनी जू के जीवन की जै जैकार हो। (प्रणाम करती है।)

श्री सिद्धिजी : (उत्सुकता के साथ) आनन्द रहो दासी। कहो क्या समाचार लेकर आई हो।

दासी : देवि ! श्री मिथिलेश कुमार सानन्द अन्तःपुर पधार रहे हैं, यही बतलाने के लिये आप श्री की सेवा में समुपस्थित हुई हूँ मैं।

श्री सिद्धिजी : (हर्ष में भर कर) इससे श्रेष्ठ संदेश कौन होगा, दासी ! बड़ी देर से प्राणनाथ की प्रतीक्षा में बैठी हुई निमिष को कल्प के समान व्यतीत कर रही थी मैं । चित्रे! ! आरती का थाल लेकर द्वार देश में चलना चाहिये, मेरे सुख के केन्द्र प्रियतमजू के दर्शन के लिये !

चित्राजी : पति, प्राणे ! आरती का थाल तो पहले से ही सजा रखा है, आप श्री पधारें। हम सब सहेलियाँ आपका अनुगमन करेंगी।

श्री सिद्धिजी : अच्छा ! तो मैं चली.....

[सब सखियों के साथ चलकर श्री सिद्धिजी द्वार–देश में श्री लक्ष्मीनिधिजी की आरती उतारकर प्रणाम करती हैं। कुँअर अपनी प्रियतमा को उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। तत्पश्चात श्री सिद्धिजी अन्तःपुर में ले जाकर अपने प्रियतम को सिंहासन में बैठाकर श्री मिथिलेश कुमार का सविधि पूजन करती हैं। सब सखियाँ सेवा–साज लिये खड़ी हैं। पूजा समाप्त होने पर कुँअर अपनी प्रियतमा को अपने आसन में बैठा लेते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्रसन्न मुद्रा में, नम्रता के साथ) हृदय–हर्ष–वर्धनजू की मुख पंकज–श्री अपनी हर्षोत्फुल्लता से हृदय–गगन में प्रसन्नता की गन्ध भर कर मुझे गन्धोन्मादित बना रही है। क्या श्री कौशलेन्द्र कुमार से युक्त श्री किशोरीजू की कुशलता का संदेश आप श्री के श्रवणों को संप्राप्त हुआ है या उनके संयोग का सुअवसर शीघ्र समुपस्थित होकर हम सबको सुधा–सिन्धु में संलीन कराने वाला है। आज के स्वप्न का संसार सत्य की सृष्टि के रूप में परिवर्तित होकर द्रष्टा का दृश्य बन जायगा क्या ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आपकी दूर–दर्शिता एवं परख प्रशंसनीय है, जिसमें आपके अन्तर–जगत की जानकारी का जीवन जीता है। आप जैसी लावण्यामृतवर्षिणी हैं, वैसी ही वाण्यामृत–वर्षिणी भी हैं । आपकी वाग्सुधा की सरिता

में समवगाहन करके मैं नित्य निमग्न हो जाया करता हूँ। प्रियतमे। आज के हार्दिक हर्षोल्लास का केवल कारण यह है कि परम पूज्या अम्बाजी की अनुमति से श्रीमान दाऊजी की आज्ञा प्राप्त हुई है कि मैं श्री किशोरी जी व श्रीरामजी को लिवाने के लिये अयोध्या जाऊँ। सुधा पूर्ण वाणी श्रवण करते ही ज्ञानेन्द्रियों के साथ मेरा अन्तःकरण अमृत–सुख की अनुभूति करने लगा तथा तज्जनित आनन्द की उपलब्धि के कारण मेरे सर्वाङ्ग सुख–स्वरूप बनकर उत्फुल्ल कमल के समान शोभा पाने लगे। अहा ! आनन्द !! आनन्द !!आनन्द !!!

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ का यह अमृतोपम–संदेश आत्मा को श्याल–भाम के सम्प्रयोग–सुख के संस्मरण से आनन्दाम्भोधि में निमग्न कर रहा है। अहो ! नर–नारायण की सुलभ, सुडौल, सुन्दर, सुमधुर मूर्तियों का सम्मिलन समस्त साकेत–वासियों के नेत्रों का विषय बनेगा। अयोध्या में आनन्द की वर्षा का बाहुल्य होगा। विरह की वह्नि बुझ जायगी और शान्ति–सुख का सागर उमड़ आयेगा जिसकी स्मृति मुझे अभी से आनन्द के पालने में झुलाने लगी है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे मधुर–भाषिणी ! आप अपने ननँद–ननदोई के विषम–वियोग से तो विदग्ध हो ही रही थीं, ऊपर से मेरी दयनीय–दशा जलती हुई अग्नि में धृताहुति का काम कर रही थी किन्तु आज अपने प्रीतम की प्रसन्नता से मेरी प्राण–प्रिया प्रहृष्ट–वदना दिखाई दे रही हैं अतएव मैं भी अधिक अनुकूलता का अनुभव करता हुआ रोम–रोम की हर्षध्वनि से सुख–सिन्धु की ओर प्रविष्ट हो रहा हूँ।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! श्रीमान् पिताजी किस दिन अयोध्या जाने के लिए आप श्री को आज्ञा प्रदान किये हैं ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! परसों पुष्य नक्षत्र की शुभ बेला में प्रस्थान करने का अनुशासन श्रीमान् पिताजी से मुझे प्राप्त हुआ है।

श्री सिद्धिजी : मेरे प्रियतम ! अपने आराध्य देव का दर्शन कर परमानन्द की अनुभूति शीघ्र करें, यह दासी के हृदय की प्रेम भरी पुकार है। प्रभो ! द्वैताद्वैत–शून्य–शुद्ध–विशिष्ट–ब्रह्म के साथ समरस और अभेद रहते हुये भी प्रेमानन्द की अनुभूति करने के लिये भक्तों ने भगवान के साथ अपना भेद बना रखा है, या यों कहें कि भक्त ही भक्ति सुख के लिये भगवान और भक्त बनकर उभय विधि की लीला किया करता है अर्थात् पूज्य–पूजक बनकर अनुपमेय अनर्घास्वाद का समनुभव कर सुखी हुआ करता है तदनुसार आपका श्री अवनिप कुमार से अभेदत्व सहज सिद्ध होते भी आप श्री अपने मन की मौज से भेद इसलिये बना रखे हैं कि प्रेमा–भक्ति का अनुपम सुख संभोग स्वयं करें और संसार को उसी अनुभूत–आनन्द का आस्वादन करायें। मंगलानुशासन करती हूँ कि श्याल वर भाम की जोड़ी जगज्जीवों को अपनी अमृत वर्षिणी चेष्टाओं से चैतन्य घन का आनन्द अनवरत वितरण करती रहे। अहा ! श्यामसुन्दर अपने सौन्दर्य–माधुर्य–सुधा पूर्ण अंगों से आपका आलिंगन करके तथा अपना अनाख्येय प्यार प्रदान करके आपके सुख से सुखी होंगे, इस कल्पना से समुत्पन्न कल्पनातीत आनन्द ही तो सेविका का श्रेष्ठ सुख है। धन्य है भक्त और भगवान के पारस्परिक स्नेह को, जो प्रतिक्षण, प्रतिक्षेत्र और प्रतिभाव में प्रवर्धित होकर एक–दूसरे को अनुगामी और आधीन बनाये रहता है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! अपने प्रिय के सुख में सुखी रहने की भावना कितनी उज्वल और उदात्त है आपकी। सर्वस्व त्याग तथा औदार्य की अनुपम झाँकी का दिव्य–दर्शन आप में करके मैं धन्य हो गया। अब अयोध्या प्रस्थान करने के प्रथम आवश्यक पहलुओं पर विशद विचार हम लोगों को कर लेना चाहिये। क्यों ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : जीवन धन ! अवश्यमेव आवश्यक और उपादेय पाथेय एवं देय की समग्र सामग्रियों पर विचार करना होगा। माता–पिता और आचार्यनुशासन के अनुसार अपना दृढ़ निश्चय करना होगा। यह सब आप श्री की सुख सुविधानुसार समय से हो जायगा। श्रीमान् दाऊजी को स्वयं इसकी चिन्ता होगी अतएव आप निश्चिन्त होकर शयन करने के अवसर का उल्लंघन न करें, रात्रि बहुत व्यतीत हो चुकी है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आप से मैं सहमत हूँ, शरीर को कुछ विश्रान्ति दे देनी चाहिये क्योंकि कल सबेरे से प्रस्थान की तैयारी में जुट जाना होगा।

[दोनों शयन कक्ष को प्रस्थान करते हैं।]

पटाक्षेप

अष्ट चत्वारिंशः दृश्यः ४८

[श्री लक्ष्मीनिधिजी अपने माता–पिता एवं गुरुजी की आज्ञा और उनके आशीर्वाद को प्राप्त कर श्री सिद्धि सदन में श्री सिद्धि कुँअरिजी के समीप बैठे हुए अयोध्या प्रस्थान करने की वार्ता कर रहे हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! श्री अयोध्या प्रस्थान करने का शुभ–मुहूर्त आ गया है, आशीर्वाद से युक्त गुरुजनों का अनुशासन भी प्राप्त हो चुका है। समुचित सामग्रियों का जुटाव हो चुका है। मेरे साथ जाने वाले बन्धु, सचिव, सखा, सेनप, विप्र, साधू और सेवक सभी साधनों से संयुक्त सजधज कर पुर के बाहर प्रस्थान कर चुके हैं। अब मैं भी प्रस्थान करने की अनुमति आप से पाना चाहता हूँ।

श्री सिद्धिजी : (प्रेम में भरकर साश्रु) प्राणनाथ ! आपका अदर्शन अनुचरी को सदा असह्य रहा है, है और रहेगा किन्तु मेरे प्राणेश्वर को अपने आराध्यदेव के दर्शन से लोकातीत असीम आनन्द की अनुभूति होगी इसलिए आप श्री के सुख को अपना सहज सुख समझने वाली दासी आपकी इस अनुपमेय यात्रा से सहमत है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : सखि! आपसे मुझे ऐसा ही विश्वास है। आप शरीर की छाया की भाँति मेरा अनुगमन करने वाली सहधर्मिणी हैं। सामयिक सहायता तथा स्वकीय सद्विचारों से सुपवित्र सम्मति देकर मुझे सर्वदा परमार्थ–पथ में चलने की प्रीति पूर्ण प्रेरणा प्रदान करती आ रही हैं आप! जिसके प्रतिफल स्वरूप मैं गन्तव्य–पथ से भ्रष्ट न होकर सुख से श्रेयस्कर यात्रा का यात्री बनकर वहाँ पहुँच जाऊँगा जहाँ से कहीं भी किसी ओर मार्ग ही नहीं गया है अर्थात् मेरे चलने का भी अन्त हो जायगा।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ कभी–कभी खूब मजे की बात कहते हैं। भला दिनकर का साहाय्य क्या दीपक कर सकता है? पानी की बूँद पयोधि में क्या बाढ़ ला सकती है?

उर–प्रेरक को बेचारा हृदय क्या प्रेरणा दे सकता हे नाथ! दासी की देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आत्मा आप श्री की है और आप ही से ये प्रकाशित भी हैं।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे। आपके ऐसे आर्द्र भाव और अप्रतिम स्नेह ही ने तो मुझे प्यारी के प्राधीन बना रखा है। अच्छा अब यह बतलायें कि आपका संदेश मुझे क्या सुनाना होगा अयोध्या जाकर?

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) सखे! मुझे जो संदेश अपने आराध्यों को भेजना है वह आपको अविदित नहीं है किन्तु प्रार्थना के रूप में कहती हूँ श्रवण करें नाथ! इस अकिंचन अबला की ओर से एकान्त पाकर श्री रामजी महाराज के चरणों में अनेकशः स्नेह पूर्ण प्रणाम निवेदन करके कागज पर अंकित दासी के इस चित्र को चुपके से उनके चरणों के तले डाल देंगे, साथ ही अश्रु–जल से संसिक्त इन तुलसी–दलों को भी प्रभु के पाद–पृष्ठ पर चढ़ाने की कृपा करेंगे।मेरी इस दयनीय दशा का विस्तृत वर्णन मेरे प्राणेश्वर स्वयं करेंगे ही अतएव उसे क्या कहना है। श्री किशोरीजू से प्यार पूर्ण मिलन और अभिवादन कह करके, कहेंगे कि तुम्हारी भाभी अपनी ननँद के बिना इस आशा से जी रही है कि मुझे वैदेही के दर्शन का दिव्यानन्द पुनः प्राप्त होगा। श्री किशोरीजू के वियोग जन्य विकलता की स्थिति का चित्रा के द्वारा खींचा गया यह चित्र भी हमारी ननँद को समर्पण करने का अनुग्रह करेंगे। श्री भरतजी, श्री लखनलालजी, और श्री शत्रुघ्नलालजी तथा श्री माण्डवीजी, श्री उर्मिलाजी, श्री श्रुतिकीर्तिजी को सखियों और दासियों समेत मेरी ओर से अभीष्ट यथोचित अभिवादन कहेंगे। नाथ ! श्री किशोरीजू के श्वसुर और सर्व सासुओं से इस सेविका का चरण स्पर्श प्रणाम निवेदन करेंगे। भेंट जिसे जो देनी है, वह तो सेवकों के साथ रथों में भराकर कल ही आपसे निवेदन कर चुकी हूँ।विशेष रूप से जो पथ्य वार्ता दासी के हित साधन में उपयुक्त हो वही आप श्री के माध्यम से प्रार्थनीय होगी ।मुझे अपने हिताहित का क्या ज्ञान ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे निरभिमानिनि वाक्कुशले! आराध्यदेव आराधक के आन्तरीय सर्व समय के सर्वभावों को सर्वथा जानते हैं। वाणी के विसर्ग काल में वार्ता कुछ बिगड़ भी जाय तो वे उसे नहीं अवलोकन करते क्योंकि भावुक के भीतरी भावों से रीझे हुये राम को बाहर दृष्टिपात करने का अवकाश ही कहाँ है, प्रिये! मेरा स्वयं का अनुभव तो यह कहता है कि मेरे ध्येय–ज्ञेय श्री रघुनन्दन राम का संयोग–वियोग भी अपने भक्तों को अपने असाधारण माधुर्य–रस का आस्वादन कराने के लिये ही होता है अन्यथा भक्तों को माधुर्य क्या है, इसका ज्ञान असंभव हो जाय।

श्री सिद्धिजी : मेरे सर्वेश्वर! अपने भाम–भगिनि के साथ शीघ्रतिशीघ्र दर्शन देकर तृषितार्ता की तीव्रतम तृषा और आर्ति को शमन करना कृपासिन्धु के अनुरूप होगा अन्यथा आपकी सेवा से वंचित होने पर धैर्य कहाँ तक साथ देगा, मैं स्वयं नहीं समझती।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये? मुझे स्वयं चिन्ता है कि वैदेही के विरह से विदग्ध आपके हृदय को शीतल बनाने का प्रयास करके शीघ्रतिशीघ्र उसमें सफलता प्राप्त कर सकूँ।

श्री सिद्धिजी : नाथ! दासी को यह महान विश्वास है कि आप स्वयं मेरे सर्व विधि संरक्षक हैं किन्तु आतुरतावश प्रार्थना करने की धृष्टता सेविका से बन ही गई, क्षमा करेंगे प्रभो!

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (हृदय से लगाकर) प्रियतमे! अब मुझे विदा दें जिससे प्रस्थान करने की बेला का अतिक्रमण न हो।

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) नाथ की इच्छा ही तो दासी की इच्छा है उसका उल्लंघन करना दासी के स्वरूपानुरूप नहीं है, प्रभो! चित्रे! आरती करके हम लोग प्रियतम का मंगलानुशासन करें तत्पश्चात प्रणामादि कर्तव्यों का अनुष्ठान करके अपने हृदय सर्वस्व की मंजुल मूर्ति को हृदय में धारण कर लें। हाय! भार्या को भर्तृ-वियोग कितना कष्टकर होता है। हाय! विरह का भय संयोग-दशा में भी संयोगिनी को वियोगिनी बनाकर विरहवह्नि में विदग्ध किये बिना नहीं छोड़ता। हाय ! प्राणनाथ के दर्शन बिना ही अब इसे अकेले सिद्धि-सदन में बसना होगा। हाय.....

(कह कर प्रेमाश्रु को बहाती हुई प्रेम विभोर बन जाती हैं।)

चित्राजीः (चैतन्य करके) पति-प्राणे! प्रतिव्रता पत्नी के लिए पति का वियोग अवश्य असह्य संवेदना समुपस्थित करता है किन्तु आप जैसी बुद्धिमती को धैर्य धारण करना भी स्त्री-धर्म का औचित्यानुरूप आभूषण अपने अंगों में आरोपित करना आपके लिए अत्यन्त अनिवार्य है । श्री मिथिलाधिपनन्दनजू अल्पकाल के लिए आप से विलग हो रहे हैं किन्तु आत्मा से उनका सन्निवास आपके संन्निकट ही है। प्रियतम का प्रवास प्रियतमा की प्रीति विवर्धन के लिए तथा आपको आपकी अभीष्ट वास्तव वस्तु की प्राप्ति कराने के लिए है, वह भी आप श्री की प्रेरणा से अतएव अब धैर्य धारण कर अपने प्रियतम की प्रस्थान-वेला में आप को मंगलानुशासन करना चाहिए उनका!

श्री सिद्धिजी : सहेली! सब समझ रही हूँ किन्तु क्या करूँ? प्राणनाथ के वियोग में प्राण-अधीरता का अवलम्बन लेने लगें तो?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : पति-प्राणा के प्रेम की पराकाष्ठा की परिस्थिति ही हृदय-सिन्धु में अनेकानेक भावों की तरंग-मालिकाओं का निदर्शन कराती है अतएव प्रियतमा के परिसृत प्रेमोद्‌गार पद-पद में प्रियतम को परमानन्द प्रदान करने वाले हैं, चित्राजी!

चित्राजी : प्रेम-मूर्ति की मधुर-मधुर वचनावली ही हम अबलाओं का अवलम्बन है, जिसमें सत्य का सर्वथा पुट दिया रहता है। आप श्री की अनुपस्थिति में आपकी चरित-चन्द्रिका से निर्झरित सुधा ही तो हमारे देह में प्राण का संचार किये रहने में सर्वथा सक्षम है।

श्री सिद्धिजी : मेरे नाथ भगिनी-भाम के प्रेम से कितने प्रभावित एवं अभिभूत हैं यह मैं उनके अवध-यात्रा की उत्सुकता तथा त्वरा से परिज्ञान रखती हुई भी स्वार्थ की विवशता से शीघ्र बिदा नहीं दे रही हूँ। हाय.......!. यह अवज्ञा है, अपराध है।

(कहती हुई पति-परमेश्वर के चरणों में लिपट कर अश्रु-विमोचन करने लगती हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (उठाकर हृदयालिंगन करते हुये अश्रु पोंछकर) प्रियतमे !हमारी-तुम्हारी सभी विचार-धारायें एवं चेष्टायें वास्तविक वस्तु के परिचय, परिशीलन और प्राप्ति करने के लिये प्रारम्भ से ही रही हैं। परमात्मा की परम कृपा से हमें उसका अकथ अन्वेषण करना नहीं पड़ा, उलटे वह परात्पर-परम-शिवद-तत्व स्वयं

चलकर अपने अकिंचन जन का अन्वेषण करता हुआ हमें अपने प्राँगण में प्राप्त हो गया। हा! आश्चर्य ! आश्चर्य!! महान आश्चर्य!!! जिसे योगिवर्य अपने अन्तर-जगत में योग-बल से ढूंढ़ते-ढूंढ़ते नहीं प्राप्त कर पाते और हार मानकर बैठ जाते हैं वही हमारे नेत्रों का विषय बना हुआ हमारे साथ-साथ मज्जन, अशन, शयन करने में परमानन्द की अनुभूति करता है अतएव कृतज्ञता प्रकट करते हुए प्रेमा पराभक्ति के भूरुह में विकसित भाव-सुमनों से उस परमार्थ-तत्व के युगलांघियों की अभ्यर्चना करनी ही चाहिये किन्तु निर्धन के धन कहाँ ? स्नेही तो अपने स्नेह-भाजन की अनुपस्थिति में अपने को कदापि नहीं सहता। हाय! मैं तो भक्तिज्ञान, वैराग्य एवं योग की बातों की केवल झड़ी लगाता रहा, मेरी यह साकेत-यात्रा उन्हीं योगिधेय की अहैतुकी-अनुकम्पा का प्रत्यक्ष प्रमाण है इसलिये इस अनुग्रह को शिरोधार्य कर अब मुझे अविलम्ब इसी मुहूर्त में यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिये। आप विरह जन्य चिन्ता की चिनगारी से जलें नहीं, मैं अल्प समय में ही आपकी अभीष्ट वस्तु को लेकर लौट आऊँगा । आपके प्रस्ताव को समर्थन करने वाले गुरुजनों के आदेश का अतिक्रमण आपके पति-परमेश्वर से कैसे संभव हो सकता है, प्रिये! "गुर्राज्ञा गरीयसी" गुरु-चरणों में नमन किये बिना एवं उनकी आज्ञा शिरोधार्य किये बिना मनुष्य मानी तो हो सकता है किन्तु ज्ञानी नहीं। आचार्य श्री के चरण-कमलों में अमल-अनुरागी ही लोक-वेद में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं तथा उनके सौभाग्य का अपरिसीमन देखकर सुर-नर-मुनि का समाज आश्चर्य दृष्टि से युक्त हो जाता है। अस्तु, आदर युक्त आचार्य आज्ञानुवर्तन एवं सेवन ही सर्व सिद्धियों का मूल स्रोत है। आराध्य की अमोघ कृपा भी आचार्य कृपा पर ही अवलम्बित है।

श्री सिद्धिजी : प्रियतम का अयोध्या प्रस्थान आनन्द की राशि को मिथिला की खोर-खोर में बिखेरने के लिये हो रहा है। दासी स्वयं कब से प्रतीक्षा कर रही थी कि वह शुभ अवसर कब आयेगा जब श्रीमान पिताजी की अभिरुचि तथा आचार्य आज्ञा को प्राप्त कर मेरे जीवन-सर्वस्व अयोध्या गमन करेंगे और वहाँ अपने भगिनि-भाम के चंद्रमुख का दर्शन करके संतप्त-हृदय में शान्ति का समनुभव करेंगे। प्रभो! आपके अनुराग से पोषित यह अनुचरी प्रोषित-भर्तृका बनने जा रही है। अतएव इस आशंका से हृदय में विरह का आन्दोलन उठ जाना अस्वाभाविक नहीं है नाथ ! तो भी दासी स्वयं को खूब सम्हाले हुए है। चित्रे ! प्यारेजू का प्रस्थान पवित्र-वेला में ही होना चाहिए। समय का उल्लंघन एवं आचार्याज्ञा का हनन न हो इसलिये आरती सजाकर शीघ्र ले आओ।

चित्राजी : स्वामिनीजू! पूजन-सामग्रियों के समेत आरती सजी-सजाई कब से रखी है। आपके पूजन करने में देर है।

श्री सिद्धिजी : अरी सहेली ! मेरी आँखों का अतिथि-प्रियतम का मुख-कमल किंचित काल के लिये मेरे सम्मुख है अतएव मेरे नेत्र-भ्रमर उसके मकरन्द का पान करने से तृप्ति का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। जब तक पुनः दर्शन सुलभ नहीं होता तब तक के लिये इन्हें आहार की चिन्ता आन पड़ी है। अच्छा, अब आरती करके प्राणानाथ को समय से अयोध्या प्रस्थान करने देना चाहिये। मोह-वश विलम्ब करने का अपराध हमारे अंगों का स्पर्श न करें।

चित्राजी : मैं तो आरती करने की समग्र-वस्तुयें लिये खड़ी हूँ, लीजिये, पाद्यादि समर्पण करें।

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) प्राणनाथ! आपका पूजन कर ले दासी, ठीक है न ? इतना समय तो शेष है न ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये! प्रसन्नता के साथ अपनी अभिलाषा की पूर्ति करिये! हाँ, शीघ्रता करने का स्मरण चित्त पर चढ़ा रहे।

श्री सिद्धिजी : नाथ की आज्ञा का अनुवर्तन ही तो दासी के द्वारा किया हुआ उत्तम कैंकर्य है। तात्पर्य यह कि सेविका की सार्थकता सेविका की रुचि में नहीं, स्वामी की संतुष्टि में है। तुष्टि का पता तो संतुष्टि अथवा संतृप्ति की बार-बार परिपुष्टि करने पर या स्वामी के मुखाम्भोज के विकास का दर्शन करके ही लगता है।

(श्री लक्ष्मीनिधिजी का षोड़शोपचार पूजन करके सिद्धिजी आरती उतारती हैं। सखियाँ सेवा-साज लिये खड़ी हैं, पंच-ध्वनि हो रही है। अंत में सब मंगलानुशासन करती हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी :(पुनः प्रणाम करती हुई अपनी प्रियतमा को हृदयालिंगन् करं) प्रियतमें! आपके समीप से अयोध्या प्रस्थान करने की शुभ-बेला अत्यन्त निकट आ गई इसलिये अब मुझे प्रस्थित हो जाना चाहिये।

श्री सिद्धिजी : (नेत्र जल रोककर) स्वामिन्! सहर्ष प्रस्थान करें अब ! आपकी यात्रा मंगलमयी हो। चित्रे! प्राणनाथ का मंगल हो समवेत स्वर से सभी सहेलियाँ व दासियाँ उच्चारण करें।

चित्राजी : सुनैनानन्दवर्धनजू का मंगल हो, मंगल हो, मंगल हो।

पद : प्राणनाथ का मंगल मंगल मंगल हो।
अवध यात्रा सुखमय होवै, भगिनि-भाम निज नयनन जोवै।
सिया भ्रात का मंगल हो।।
सबके सुखद सनेह समाई, रहहिं रसे रस में हर्षाई।
राम श्याल का मंगल हो।।
सारा अवध समाज लिवाये, लौटहिं आनन्द सिन्धु समाये।
सिद्धि स्वामि का मंगल हो।।

(सब सखियाँ एक साथ मंगल हो, मंगल हो दुहराती हैं। श्री हरि स्मरण करते हुये श्री लक्ष्मीनिधिजी उठकर प्रस्थान करते हैं। श्री सिद्धिकुँअरिजी रक्षा मंत्र पढ़ती हुई सखियों के साथ द्वार तक पहुँचाने आती हैं।)

श्रीलक्ष्मीनिधिजी : प्रिये! अनुगामिनियों के साथ अन्तःपुर लौट जाएं, आप सुफल मनोरथा हों।

श्रीसिद्धिजी : (गद्‌गद् वाणी से)दासी का सौभाग्य कहाँ है, नाथ ! कि वह अपने स्वामी का अनुगमन करे। प्राणनाथ ! आपके साथ मन को भेजकर शरीर के साथ लौट रही है, अनुचरी।

(श्रीसिद्धिजी चरणों में लिपटकर अभिवादन करती हैं। लक्ष्मीनिधिजी उठाकर प्रियतमा का अलिंगन कर आश्वासन देते हुये रथ

पर बैठ जाते हैं। ससमाज सिद्धिजी पुष्प-वृष्टि करती हुई त्रिवार जीवन सर्वस्व की मंगल कामना करती हैं। रथ के ओझल हो जाने पर विरहेक्षणा, पति-प्राणा विदेह-वधू अन्तःपुर में प्रवेश करती हैं।)

पटाक्षेप

एकोन पञ्चाशः दृश्यः ४९

[श्री सिद्धिजी अपनी अट्टालिका में चित्रादि सखियों से सेवित आसनासीन हैं। मन में प्रसन्नता के बादल उमड़-घुमड़कर वारिज नेत्रों से वारि की वर्षा कर रहे हैं शुभ-शकुनों का बाहुल्य प्रियतम के प्रिय दर्शन का संदेश दे रहा है तो भी आतुर-हृदया लक्ष्मीनिधि-वल्लभा अपने आराध्य का चिंतन कर-करके अधीर मना सखियों से वियोग भरी बातें कर रही हैं।]

श्रीसिद्धिजी : चित्रा! ईश्वर की अनुकम्पा से मुझे ऐसा मूलधन मिला है कि उसके ब्याज में अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति अपने आप हो गई है किन्तु आज अपरिसीमित ब्याज की कौन कहे, मूल भी आँखों से ओझल है। हाय! प्राणनाथ को पुरी अयोध्या पधारे कितने दिन हो गये। मकर में सूर्य भगवान के साथ सीताग्रज साकेत पधारे थे और अब भगवान भास्कर मकर से कुम्भराशि में पधारकर मीन में जाना चाहते हैं किन्तु श्याम-गौर तेज से संयुक्त आत्मनाथ का आगमन अयोध्या से मिथिला में अब तक नहीं हो सका। सहेली! लगता है कि श्याम सुन्दर के संयोग सुख एवं विदेहतनयाजू के अत्यधिक स्नेहानन्द को प्राप्त कर प्राणनाथ कहीं मिथिला को तो नहीं भूल गये? हाय। उत्तम श्लोक श्रीराम का अनन्तानन्त सौन्दर्य का सिन्धु भव-स्मारक शरीर-सम्बन्धी वस्तुओं को सहज ही छुड़ाकर पुनः उनमें मन को प्रवेश करने का किंचित समय नहीं देता। अस्तु, मिथिलेश कुमार भी अपनी सम्बन्धित वस्तु का स्मरण न करते हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

चित्राजी : त्रैलोक्य-वंदिता चरण वसुधाधिप-नन्दनजू तथा श्री अवनिप नन्दिनीजू के चरण-कमलों को प्राप्तंकर जड़-चेतनात्मक जगत का चित-चञ्चरीक उन्मत्त होकर अपने से भी हाथ धो बैठता है तो फिर अन्य के अस्तित्व को कौन स्थिर रख सके, यह वार्ता सर्वथा सत्य पूत है किन्तु मिथिला को मिथिलेश-कुँआर बिलकुल विस्मरण के गर्त में डाल दिये होंगे, सर्वथा असंभव है क्योंकि लीलामय प्रभु की लीला-स्थली मिथिला, श्री अयोध्या से अपृथक है। युगल-पुरियों में द्वैत का दर्शन दीर्घ-दर्षियों ने उसी प्रकार नहीं किया है जैसे चणक के भीतर की दोनों दालों में। जब श्री श्यामसुन्दर रघुनन्दन तथा चम्पक-वर्णी, चार्वाङ्गी, मिथिलाधिप-नन्दिनीजू मिथिला-प्रेम में आसक्त होकर मिथिला को अपनी स्मृति से विलग करने में सक्षम नहीं हो सकते, तो विदेह-वंश विभूषण जू इस प्रेम-पुरी को कैसे भूल सकते हैं क्योंकि अस्वतंत्रता के कारण उनका चित्त वही चिन्तन करता है जो उनके आराध्य का चित्त, पुनः तदीयत्वानुराग उनके रग-रग में भरा हुआ है। मिथिला का विस्मरण उनको अयोध्या के

भूल जाने पर ही संभव है इसलिये युगल किशोर की प्रियतमा वस्तु पर उनका अनुराग अपने प्रियतम के अनुगुण्य है।

श्रीसिद्धिजी : चित्रे! चिन्तित-चित्त चिन्ता की चिनगारियों से संतप्त होता हुआ कुतर्क की बातों को ही तो सोचा करता है, उसे जल में प्रवेश करने पर भी अग्नि-भय की शंका सताये रहती है। कोटि-कोटि कुतर्कों के कारण विश्वास के साक्षात स्वरूप में भी उसे अविश्वास की मूर्ति दृष्टिगोचर होने लगती है अतएव प्रेम-बन में बिहरने वालों के मन में प्रेमास्पद के चले जाने, त्याग देने और न लौटकर आने के भय के चुभीले-काँटे चुभते ही रहते हैं जिनके चुभने से प्रेम-वैचित्र की विचित्र स्थिति में अत्यन्त अभिनिवेश से युक्त स्नेही न जाने क्या-क्या बड़बड़ाया करता है। उपर्युक्त कथन के इस संदर्भ से प्रेमी के असामान्य लोक-वेद से अतीत हृदय का परिशीलात्मक परिचय देकर अपने को प्रेमिका की पंक्ति में बैठाने का प्रयास मैंने नहीं किया है, अपितु चित चोर में लगे हुये चित्त का परिशोधित चित्र अपनी सहेली के सामने रखा है।

चित्राजी : प्रेम-परायणे! प्रेम की सर्वावस्थायें आपके हृदय में अहर्निशि निवास किया करती हैं। समय-समय पर सबका प्रकाश हमें आप श्री के अंगों में दिखाई देता रहता है। अस्तु, आपको प्रेम-दशा की दुर्दशा केवल मालूम ही नहीं है, अपितु निरन्तर उसकी अनुभूति किया करती हैं। राम-प्रेम की प्रतिमा हमारी स्वामिनीजू का सदा मंगल हो, मंगल हो, मंगल हो।

(इतने में श्री सिद्धिजी को शुभ-संदेश सुनाने हेतु दासी का प्रवेश)

दासी : (प्रणामकर)स्वामिनीजू के जीवन की जय जयकार हो।

श्रीसिद्धिजी : कहो दासी, क्या समाचार है? तुम्हारे मुख-मण्डल की प्रसन्नता किसी परम प्रिय वस्तु की प्राप्ति की सूचना सी दे रही है।

दासी : श्री अम्बाजी ने शुभ-संदेश सुनाने के लिये मुझे आप श्री के समीप भेजा है, स्वामिनीजू! सुख संविधायिनी-वार्ता के स्मरण मात्र से समुत्पन्न हार्दानन्द के मेघ ने मेरे मुख-मरुस्थल को हरा-भरा कर दिया है। प्राप्त प्रसन्नता के भेंट एवं आपके रोग की अचूक-औषधी समर्पित करने के लिये आप श्री के पास दौड़ी चली आ रही हूँ।

श्रीसिद्धिजी : दासी! दुर्दान्त-विरह की विभीषिका का अनायास अवसान करने वाली सन्देश-सुधा की जड़ी लेकर आई हो क्या?

दासी : विरहेक्षणे! अवश्यमेव, आत्मानन्द के विकास और अन्धकार के अभाव को उपस्थित करके आप श्री के संकुचित-मुखाम्भोज को प्रफुल्लित करने वाला संदेश-सूर्य लेकर आई हूँ, अपनी स्वामिनीजू के समीप।

श्रीसिद्धिजी : (आतुरता के साथ) मेरी हितकरी दासी! तुम शीघ्रातिशीघ्र उस उत्तम सन्देश-सूर्य को मेरे सम्मुख समुपस्थित करो जिससे मैं वियोग-निशा के निबिड़तम से आछन्न अपने उर-स्थल को संप्रकाशित करके संयोग-सुख की आशा-सुधा से संप्लावित कर सकूँ।

दासी : स्वामिनीजू! ग्रीष्म कालीन मध्यान्ह की तीव्रतर उष्मा से मुरझा कर ऊष्ण-वायु के झकोरों से पृथ्वी पर गिरी हुई लता जैसे जल के अभाव से दयनीय दशा को

प्राप्त हो जाती है, वैसे ही अपने ननँद-ननदोई के विरह ताप से संतप्त होने पर भी, अपने श्रेय-यात्रा के साथी का साथ न पाकर आप की शरीर-यष्टि अत्यन्त कृश हो गई है किन्तु आज अपनी दासी के वचनवारि से वह पुनः प्रसन्नता की अनुभूति करेंगी और नित्य-निकुंज की कमनीय-कान्ति का परिवर्धन करती हुई नित्य-निकुंजेश्वरी की दृष्टि में आकर उनकी प्राण-वल्लभा बन जायेंगी।

श्रीसिद्धिजी : अच्छा! सुनाओ, शीघ्र सुनाओ मेरे प्रियकर संवाद को।

दासी : स्वामिनीजू! आपके प्रियतम अपनी चारों भगिनियों और चारों भामों के साथ अयोध्या से आ रहे हैं। साथ में ससमाज श्रीमान चक्रवर्ति चूड़ामणि श्री दशरथजी महराज हैं। कुछ काल ही में आप अपनी आँखों के अतिथियों को अवलोकन करके आनन्द-सिन्धु में समवगाहन करेंगी। श्री महारानी सुनैना अम्बाजी के कथनानुसार यह संदेश आप श्री को सुनाकर उनकी सेवा में उपस्थित होना चाहती हूँ। कहिये, क्या आज्ञा है।

(अपनी सासुजी के शाश्वत-कल्याणकारी शुभ-संदेश को श्रवण करके आनन्द मग्ना सिद्धिजी, कृपा-सिन्धु की जय हो, जय हो, कहने लगती हैं।)

श्रीसिद्धिजी : जय जन-मन मानस-हंस की जय।
जय रघु-कुल चन्द कृपाल हरे।।
जय मिथिला अवध - बिहारी जय।
जय रवि-कुल राम रसाल हरे।।
जय जय रसिया रसिकिनि जय जय।
हेमलता हिरण्य नाभ हरे।।
जय रस वर्धन जय जय रसमय।
जय सिधि-सद्मनि रस लाभ हरे।।

(प्रसन्नता में भरकर) दासी! तुम्हारे मुख विनिस्सृत शुभ-संवाद को श्रवणकर मैं वास्तविक आनन्द का चित्र अपने चित्त पटल पर चित्रण कर कें पुनः उसी के रूप में परिणत हो गई। अहा! इस शुभ-संदेश के समान सुखावह कोई संवाद नहीं हो सकता अतएव प्रत्युपकार में तुमको देने के लिये तदनुकूल किसी वस्तु का दर्शन नहीं कर पा रही हूँ मैं, किन्तु कर्तव्य को पुरस्सर करके ये वस्त्राभूषण समर्पण कर रही हूँ। तुम भी मेरे वचनों का गौरव रखने के लिये इन्हें ग्रहण कर लो।

दासी : देवि! दासी ने तो अपने सहज दासीत्व- धर्म का अनुसरण किया है जिसमें उपकार की किंचित गंध नहीं है ? अतएव प्रत्युपकार करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है, स्वामिनीजू!

श्रीसिद्धिजी : दासी ! तुम्हारी स्वधर्म-प्रवृत्ति, विषय-निवृत्ति के सिंहासन में आसीन पाट-महिषी के समान शोभायमान हो रही है, यह मैं भलीभाँति जानती हूँ किन्तु मेरी प्रेम-भेंट को मेरे प्रसन्नार्थ ग्रहण करने का पवन तुम्हारे दास्य-धर्म की प्रदीप्त ज्योति को नहीं बुझा सकेगा।

दासी : आपकी आज्ञा का अनुसरण एवं इच्छा का सम्मान करना ही तो दासी का निरुपाधिक स्वरूप है, देवि!

(वस्त्राभूषण ग्रहण कर दासी श्री सिद्धि कुँअरि जी की आज्ञा से श्री सुनैना सदन को प्रस्थान करती है।)

श्रीसिद्धिजी : (आनन्द विह्वल होकर)चित्रे ! आज मेरा आनन्द-सिन्धु अठखेलियाँ खेलता हुआ अपने ही आप मेरे आँगन में आ रहा है। आनन्द....... आनन्द... पूर्ण परमानन्द! मुझे उसमें अहर्निशि गोता लगाने का सर्वभावेन सौभाग्य विधिना ने पुनः वापस कर दिया। मैं धन्य हो गई, कृतार्थ हो गई, विरहवह्नि, शीतल-समीर बन गई। अहा हा! आज मेरे दृगों के विरहाश्रु का अविरल प्रवाह अवरुद्ध हो गया और उसकी जगह उरस्थल में सुख का समुद्र उमड़ पड़ा। कृपा-सिन्धु के कृपा-बिन्दु की जय हो, जय हो, जय हो।

चित्राजी : राम-प्रिये! युगल किशोर के परम प्रिय-पात्रों में आप श्री को सर्व मूर्धन्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आपके प्रेम से प्राकर्षित प्रेमास्पद, आज अपनी प्रेमिका का प्रेक्षण करके सिद्धि-सदन के प्राङ्गण में प्रेम-नृत्य करेंगे और अपने प्रेम का प्राचीनतम परिचय, परिकरों को कराये बिना न रहेंगे। अहो! आज मेरे नेत्र अपनी स्वामिनी को सुख के सिन्धु में निमज्जन करते देख-कर सुख-स्वरूप हो जायेंगे। आनन्द, आनन्द, आनन्द, प्रत्येक ओर आनन्द।

श्रीसिद्धिजी : सहेली! जिनकी चेतना व प्रेम के स्पर्श मात्र से यह समस्त विश्व चेतन तथा प्रेमिक बन जाता है किन्तु यह विश्व जिन्हें चेतना व प्रेम का किंचित दान नहीं कर सकता, जो सबके शयन-काल में भी जागते रहते हैं जिनको यह जीव-जगत नहीं जानता, परन्तु जो सबके सर्वावस्थाओं का सर्व ज्ञान बिना साधन के एक साथ जानते हैं, वे ही परमात्मा हैं, वे ही ब्रह्म हैं, वे ही भगवान हैं, और वे ही हमारे ननदोई राजिव लोचन राम हैं ऐसा हमारे आचार्य प्रवर श्री याज्ञवल्क्यजी महराज का बार-बार कथन है, अन्य दीर्घ-दर्शी महात्मा भी उक्त सद्गुरु देव की ध्वनि में ध्वनि मिलाते हुए दाशरथी राम को पूर्ण ब्रह्म बतलाते हैं। अहो! दिव्य दृष्टि सम्पन्न योग सिद्ध महापुरुषों के अन्तर्जगत का अनुभव ही तो जीव-जगत को ज्योति देता है इसलिये सर्व समर्थ श्री सीताराम जी मरुस्थल की मरुभूमि को यदि शस्य-श्यामला बना दें तो आश्चर्य ही क्या है? सिद्धि-सदन के प्राङ्गण में प्रेम-मूर्ति की रसमयी लीलाओं का दर्शन रसिकेश्वर की कृपा का परिणाम है क्योंकि वे प्रणत-कुटुम्ब प्रतिपालक हैं। मुझे तो श्याल-भाम की अपेक्षा-रहित सुहावनी सेवा सर्व समय मिलती रहे, बस और कुछ न चाहिये।

चित्राजी : आर्ये! आप अपने तन-मन-प्राण और आत्मा को अपने आराध्य के अथाह सिन्धु में उड़ेलकर अपने अस्तित्व को खो बैठी हैं, अस्तु उच्च सांस्कृतिक भावों के भव्य-भव्य प्रवाह में बहकर आपकी वाणी का विसर्ग आपके अनुरूप है। मुझे तो आप दम्पति का विकसित मुखाम्भोज दृष्टिगोचर होता रहे बस और कुछ न चाहिये। आज मैं पूर्ण मनोरथा हो जाऊँगी, यह कल्पना का मरुत मेरे हृदय-सरोवर में आनन्द की उत्ताल-तरंगों को उत्पन्न कर रहा है। मिथिला-बिहारी-बिहारिणीजू की जय हो, जय हो, सदा जय हो।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम्हारी देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि और आत्मा हम दोनों के सुख-संविधान में ही सदा संलग्न रहती हैं यह मैं भली भाँति समझती हूँ। मैं भी ऐसी

सहेली के सुख से सुखी होना अपना सहज स्वभाव बना रखी हूँ, हमारे पारस्परिक प्रेम का परम फल श्री नृपति-किशोरी किशोर के चरणों का परमोज्वल अमल-अनुराग है, उसी के संवर्धन का सतत प्रयास ईश्वर की अनुकम्पा के सहारे सबका होता रहे बस, यही चेतन का कार्य है। इसके अतिरिक्त अच्युत भाव-विहीन यावत् श्रौत-स्मार्त कर्मों का विविध विधान एवं वितान है वह स्वयं प्रकृति के परमाणुओं पर प्रावलम्बित है और प्राणियों को प्रकृति में स्थित रखने का प्रयास करने वाला अविद्या का प्रतिरूप है।

[इतने में चित्राजी का चित्त वाद्यों की सुमधुर ध्वनि सुनकर उधर खिंच गया।]

चित्राजी : (कान देकर) स्वामिनीजू ! सुनिये तो सही, विविध वाद्यों की तुमुल-ध्वनि कर्ण-प्रदेश में पहुँचकर प्रियतम के आगमन की सूचना दे रही है। अहा! अपने आप हृदय-स्थल आनन्द से ओत-प्रोत हुआ जा रहा है।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! अवश्य, अवश्य, मेरे प्रियतम अपने सर्वस्व को लेकर पुर के अति सन्निकट पहुँच गये हैं। अहो! आज युगल चन्द्र से विनिस्सृत सुधा का समग्र पान करके मैं अमृत बन जाऊँगी। आनन्द, आनन्द, परम आनन्द !

[श्रीसिद्धिजी हर्षातिरेक से हर्ष-मूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं।]

चित्राजी : (सचेत करके) हर्षोत्फुल्ल-नयने! हृदय के हर्षोत्कर्ष ने स्वयं को चरम-सीमा में पहुँचाकर आनन्दानुभूति के राज्य में विचरने के कारण आपको प्रकृतिस्थ नहीं रहने दिया। धन्य है आपके आराध्यानुराग को। विरह की अभिव्यक्ति जो आपके वाक्योक्ति से बराबर झाँका करती थी, आज वह अन्तर्हित होकर भी संयोग सुख के संवर्धन में शत-शत साहाय्य कार्य का संपादन कर रही हैं, अस्तु इस विरहासक्ति की संस्था का संचालन सम्पूर्ण जीवों के अन्तर्देश में होना नितान्त आवश्यक है वियोग में संयोग सुख भी सन्निहित है, यह वार्ता आप जैसी विरहिणी की ही बुद्धि में आ सकती है।

श्रीसिद्धिजी : चित्रे! तुम्हारी सूक्ष्म-बुद्धि का विकास समय-समय पर मेरी बुद्धि में प्रकाश लाता है, यह बात मैं सत्य-सत्य कह रही हूँ अन्यथा मैं अपने आपको भूली हुई कर्तव्य-कार्य करने से वंचित ही रह जाऊँ।आज अपनी आत्मा को दो सगुण-साकार सुन्दर-सुविग्रह के रूप में देख-देखकर आनन्द-सिन्धु में समाकर क्या से क्या हो जाऊँगी।

चित्राजी : देवि! विश्वात्मा राम और सीता के वैभव में सादृश्य ही नहीं प्रत्युत ऐक्य भी है। दोनों धर्म-मूर्तियों के विशाल हृदय और उनके पवित्रतम विचारों ने उन्हें जन-मन-मानस का महेश्वर बना दिया है। अस्तु दोनों के प्रति समान प्रीति का प्राकट्य तथैकात्मज्ञान, प्रेमियों के हृदय में होना तदनुरूप है। आप अपनी एक आत्मा को युगल रूप में दर्शन करती हैं, यह आपके तत्व-बोध का परम प्रमाण है। आनन्द के लिये क्या कहना है, वह तो आज मिथिला की गली-गली में बहता हुआ मिथिला वासी जड़-चेतनों को आत्मसात करके सभी को आनन्द स्वरूप बना देगा।

[परम प्रसन्नता से भरी दासी का प्रवेश]

दासी : देवि! आपका मंगल हो, मंगल हो।

श्री सिद्धिजी : दासी! आनन्द रहो। कहो क्या समाचार लाई हो?

दासी : आर्ये! आनन्द का अम्भोधि अपने आनन्द की उत्ताल तरंगों से युक्त नगर में प्रवेश कर चुका है। आपके श्वसुर देव ससमाज उसका सुस्वागत करने के लिये पधार चुके हैं अस्तु तद्विषयक विशेष–वार्ता–वैचित्र्य तथा कथा–गायन का परिशीलन न करके समयाभाव से दिव्य दृश्य के द्रष्टा बनकर दर्शन करना हम सबको औचित्य के अनुरूप होगा।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! भव्य–भवन के नवमें खण्ड में चढ़कर मिथिला और अवध के समागम–समुद्भूत सुख का समास्वादन करें तथा उत्सव के प्रकारों का प्रेम भरे नेत्रों से अवलोकन करें, दासी की तथ्य वार्ता का अनुमोदन करना ठीक है न!

चित्राजी : आपके प्रेमोत्पादक भाव एवं प्रेमास्पद के सम्प्रयोग की आतुरता नवमें खण्ड में चढाकर तथा नयनोत्सव को नयन–पथ का पथिक बनाकर अपार संवित–सुख के समुद्र में आप श्री को संलीन करने की प्रेरणा दे रही है, अतएव तत् प्रेरणा को प्रियतम की दूतिका समझकर तदादेशानुसार अवश्य आरोहण करना चाहिये, नवमी अट्टालिका में।

श्री सिद्धिजी : अच्छा आली ! चलो न महल के नवमें खण्ड पर, वहाँ से अपने प्राण–प्रिय अतिथियों के आगमन का उत्सव अवलोकन करेंगी।

चित्राजी : (उठकर) चलें, स्वामिनीजू!

[समाज के सहित श्री सिद्धिजी नवमें खण्ड को प्रस्थान करती हैं]

पटाक्षेप

पञ्चाशः दृश्यः ५०

[श्री सिद्धि कुँअरिजी उच्च भवन के ऊपरी भाग में सखियों से समावृत होकर खड़ी–खड़ी दर्शनीय–दृश्य का दर्शन कर रही हैं। ससमाज श्री चक्रवर्ती जी महाराज के नगर–प्रवेश करते ही मिथिलापुरी आभूषणों से आच्छादित आनन्द की मूर्ति सी प्रतीत हो रही है, जितने प्रकार उत्सव मनाने के लोक–वेद में वर्णित हैं, सभी का समग्र स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! मेरे प्रियतम के प्रियतम आज अयोध्या वासी समस्त परिकर–वृन्दों के साथ स्वकीय श्वसुर पुरी में प्रवेश कर रहे हैं। अहा ... आनन्द–सिन्धु की निःसीमता अपने में आत्मसात कर आनन्द की मूर्छा में मुझे स्थापित कर देगी क्या? हाय ! हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है, मेरे समस्त–अंग मुझे यह संदेश दे रहे हैं कि तुम आनन्द की धारा में बहकर अपने को सम्हाल न सकोगी ! सहेली ! मुझे मूर्छित होने का भय है अतएव तुम ऐसी सम्हाल करना जिससे अपने नयनों के उत्सव ननँद–ननदोई को नेत्र भर दर्शन कर सकूँ।

चित्राजी : अभिनिवेशित–चित्ते! भय मत करें जो अपने संकल्पानुसार अपनी अचिन्त्य शक्ति से समन्वित होकर आप श्री को दर्शन देने आ रहा है, उसका नाम है हृषीकेश, उरप्रेरक और अन्तर्यामी, नाम के अनुसार उसमें गुण भी हैं, अस्तु वह आपको सम्हालने में असावधान न रहेगा। यह अक्षरशः सत्य है कि सत्य संघ के सत्य संकल्प को विपरीत करने में प्रकृति भी कुण्ठित हो जाती है तो अन्य शक्तिशालियों की शक्ति को

सत्य संकल्पी के सम्मुख आने का साहस ही नहीं हो सकता अतएव आप चिन्ताहरण की होकर चिन्ता न करें।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! चित-चोर-चतुर चिन्तामणि जिसकी चिन्ता करते हैं, उसे किस बात की चिन्ता? किन्तु अपनी ओर का निरीक्षण करते ही अधीरता के आवरण में पड़कर व्याकुल-वदना बन बैठी। तुम्हारी विश्वस्त वाणी पर मुझे पूर्ण विश्वास है, आराध्य की अनुकम्पा से मेरे अतिशयानन्द की अनुभूति में अचेतनता आकर अवरोध नहीं कर सकती।

चित्राजी : (पश्चिम की ओर हाथ से संकेत करती हुई) स्वामिनीजू! देखिये, देखिये तो इधर को ! अहा..... ! अग्निवर्ची ऋषियों का सुन्दर समाज सुरथों से नगर में प्रवेश कर रहा है। अहो! शत्रुञ्जय नामक गज पर चढ़े हुये कौशल-नरेश स्वयं की समाज के बीच सम्पूर्ण देवों से युक्त देवेन्द्र की तरह शोभायमान हो रहे हैं। वह .. वह देखें। चारों चक्रवर्ती कुमार मिथिलेश कुमार के साथ घोड़े पर चढ़े हुये, पंच-प्राणों के समान मृत-भूता निमि-नगरी की देह में प्रवेश कर रहे हैं! अहा ! उन भव्य-भव्य रत्नमयी-शिबिकाओं में श्री राजकिशोरीजू व उनकी बहनें ही चढ़ी होंगी, लाक्षणिक दृष्टि-कोण से मुझे यही प्रतीति हो रही है। समाज की शोभा देखते ही बनती है। शेष-शारदा को भी उसके वर्णन की बेला में मौन का अवलम्बन लेकर ही रहना पड़ेगा।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! इस समाज के रहस्य-वेत्ता ही समाज की गरिमा का ज्ञान रखते होंगे, यह बात सर्वथा सत्य है किन्तु यह भी सत्य है कि समाज को चर्म-चक्षुओं से देखने वाले कोई प्राणी भौमा-सुख से वंचित नहीं रह सकते भले उन्हें समाज के ऐश्वर्य की इयत्ता एवं महिमा का ज्ञान न के बराबर हो। सखी! नयनाभिराम नवल नागरी-नागरजू के दर्शन का लाभ संवरण न करते हुये नागरिकों के लोभी लोचन निर्निमेष हो रहे होंगे, जैसे कि हमारे नयन दूर से दृश्य देखने पर भी पलक गिराने की इच्छा नही कर रहे हैं। अहा... ! हमारे श्वसुर देव की ओर से अगवानी करने के लिये विपुल-वैभवादि साहाय्य-सामग्रियों के साथ अमरतुल्य नागरिकों का समाज गया है, जो अयोध्यावासियों की योग्यता के सर्वथा अनुरूप है। दोनों समाजों की पार्थक्य सत्ता अब उसी प्रकार एकत्व के रूप में दृष्टिगोचर होने लगी है, जैसे रत्नाकर और महोदधि नाम के दो समुद्रों का सम्मिलित होकर एक दिखाई देने लगना। अहो ! आनन्द के जल से परिपूर्ण यह महोदधि अपनी उर्मियों के थपेड़ों से अनन्त ब्रह्माण्डों को ढहाकर अपने में आत्मसात करने की शक्ति से निश्चय समन्वित है, अर्ध प्राणावशेषित निमिनगरी को इसमें समाते कितनी देर लगेगी। अनन्त-सौन्दर्य सार-माधुर्यमहोदधि की जय हो, जय हो, जय हो।

श्री चित्राजी : वाद्य-समूहों के सरस वाही स्वर ने श्रवण-विवर से प्रवेश कर श्रवणवन्तों के हृदय को सरस बनाते हुए हर्षध्वनि से हर्षोत्फुल्ल कर दिया है। स्वामिनीजू! देखें तो सही, वाद्यकारों की कला-कुशलता तथा आनन्दभरी उनकी उछल कूद को। अहा! नृत्यकारों की भाव-भंगिमा एवं हार्दस्नेह की चर्चा करने के समय, श्रुतियाँ भी मौन हो जायेंगी।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! प्रेम की पयस्विनी में क्रीड़ा करने वाले केलिकर्त्ताओं की कामना जब सफल होती है, तब उनकी क्रिया-कलापों के प्रकार बिना प्रेरणा के स्वाभाविक

इसी प्रकार दृष्टिगोचर होने लगते हैं। आली! सुनो तो सही, वृद्ध ब्राह्मणों की मंडली ने वेद-ध्वनि के द्वारा कैसे आकाश और अवनी को शब्दायमान कर दिया है। अहा.... ! यह वेद-पाठ रघुनन्दन के ऐश्वर्य की ओर संकेत कर रहा है, बहुत प्रिय है किन्तु मिथिला के कर्णों में इन शब्दों के अन्तर्भाव का विशेष प्रभाव न पड़कर, नेत्र-पुटों से पान की हुई रूप-रस की माधुरी का अधिक प्रभाव पडा है। रोम-रोम में इसने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। देह-इंद्रिय-मन-बुद्धि और आत्मा सभी अनन्त सौन्दर्य सिन्धु में अनन्त-माधुर्य का दर्शन करते ही समाविष्ट हो गये हैं। अहो ! ऐश्वर्य से अनेक गुणें की सामर्थ्य-शक्ति आकर्षण करने के लिये माधुर्य में सर्व प्रकारेण सन्निहित है।

चित्राजी : रूप-रसिके ! श्याम-सुन्दर के चरण-कमल, "जिनमें साम श्रुति को अपनी रुनझुन ध्वनि से विलज्जित करने वाले कल हंस से नवल नूपुर बँधे हैं" दर्शन कर किसका चित्तचञ्चरीक चंचलता को छोड़कर मधुर-मधुर मकरन्द का पान करने के लिये समुत्सुक नहीं हो जाता। अहो ! पावन पीताम्बर से परिवेष्टित रुच्योत्पादक, रुचिरता से पूर्ण युगल नवल नितम्ब-बिम्ब, कनकमयी कान्ची की लहरदार लड़ियों से आलिंगित किसके मन को मोहन-मंत्र का जादू चलाकर मुग्ध नहीं कर लेता। आनन-देश में मन्दस्मिति से युक्त अरुणिम अधर, दीप्तमान दाडिम-दंतावलि, मकराकृत कुण्डलों के प्रतिबिम्बाधार अरुणिम आभा से युक्त श्याम-श्याम, गोल-गोल कपोल, शुकाकार नासिका, दृष्ट चित्तापहारी-चितवनि से युक्त रतनारी, कजरारी, कोरदार बड़ी-बड़ी आँखें, काम-धनु की शोभा को अपहरण करने वाली भृकुटियाँ, केशर-कस्तूरी के खौर से युक्त तिलकांकित भाल, कनक-कुंडलों से युक्त कमनीय कर्ण और इत्र से सिंचित सुचिक्कन कारे-कारे-घुँघरारे केश, किस बिरागी को रागी नहीं बनाते, किस निर्मोही के हृदय में मोह नहीं उत्पन्न करते, किस ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्मज्ञान को स्थित रहने देते हैं और किस भव-रस के रसिक को भव-रस की निःसारता दृढ़ाकर भव-रस से पृथक नहीं कर देते। स्वामिनीजू ! आप का कथन अक्षरशः सत्य है। रघुनन्दन के किसी अंग-प्रत्यंग के सौष्ठव का दर्शन कर कोई प्राणी माधुर्य-महोदधि में डूबे बिना नहीं रह सकता।

श्रीसिद्धिजी : सहेली ! युगल किशोर-किशोरी का स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति अन्य प्राणियों की तरह अन्यापेक्षित नहीं है, तभी तो इनका स्वरूप, इनकी स्थिति, इनकी प्रवृत्ति समस्त विश्व के वन्दनीय ब्रह्मा, विष्णु और महेश से बार-बार वन्दनीय है। युगल मूर्तियों का समस्त वैभव असमोर्ध्व है, चित्रे। इनका निःसमातिशय वैशिष्ट्य व वैलक्षण्य लोकातीत ही नहीं प्रत्युत अनन्त बैकुण्ठ व अनन्त बैकुण्ठ बिहारी-बिहारिणियों से भी अतीत है। अहा ! अयोनिजा की कृपा से अपनी भाग्य-विभूति भी बड़ी बलवान है, जिसकी समता करने के लिये समस्त भूमंडल में किसी का शिर नहीं उठ सकता। श्याम-श्यामा के सुन्दर स्वरूप का समग्र अनुभव कर-करके आज सुर-सुन्दरियों को सिहाने का समय सिद्धि कुँअरि दे सकेगी अहो ! विभाव, अनुभाव आदि द्वारा स्वयं रस-स्वरूप हमारे ननँद-ननदोई परस्पर में विषय और आश्रय बनकर अपनी रसमयी लीलाओं से सिद्धि-सदन को भी रसमय बना देंगे। आनन्द ! आनन्द!! आनन्द!!!

श्री चित्राजी : रसप्लुते! मिथिला-सीमन्तिनियों के रसमय श्रुति-मधुर संगीत जो, "युगल किशोर-किशोरी की गुण-गणावली से संश्लिष्ट हैं" समवेत स्वर में

गाये जाकर आनन्द-सिन्धु के विवर्धन हेतु पूर्णचन्द्र का कार्य कर रहे हैं। अहा ! इन मैथिल-ललनाओं के स्नेह का आलोक आकाश को आलोकित कर देव वधूटियों को इनके ऊपर सुरभित-सुमनों की विपुल वर्षा करने के लिये बाध्य कर दिया है। अहो ! वस्त्राभूषण-भूषिता, कनक-कलश-करा, नवल-निमिपुर की कमनीय-किशोरियाँ विद्युत-प्रभा को विलज्जित करती हुई, समाज की शोभा को अधिकाधिक समुन्नतशील बना रही हैं।

श्रीसिद्धिजी : सहेली ! बन्दीजनों के मुख से विशुद्ध विरद का वर्णन तथा नागरिकों के द्वारा किया हुआ जयघोष उरस्थल में उमंग की वृद्धि कर रहा है पंचध्वनियों की प्रतिध्वनि से धरा में कम्पन सा प्रतीत हो रहा है। अहा ! चारों ओर आनन्द ! आनन्द !! अभी तक विषम-वियोग-यातना से जन-जन के कण-कण के हृदय तड़प रहे थे, सभी विरह-सागर में डूबे हुये थे। सभी की समझ में सृष्टि का अणु-अणु कल्पों से बिलखता हुआ प्रतीत हो रहा था किन्तु सौभाग्य से श्यामसुन्दर रघुनन्दन के संदर्शन से आज सबकी सूखी उरस्थली अमृतरस से लबालब भर गई है। वह तड़पन वह प्यास छूमंतर होकर कहाँ भाग गई। देखो न ! सभी मैथिल नेत्र-पुटों से श्रीराम के रूप-पेय का पान कर उन्मत्त से नाचते-कूदते हुये अतिथि-श्रेष्ठ को पुरी में प्रवेश करा रहे हैं। धन्य है नागरिकों के नृत्योंपकरण उछल-कूद एवं उनके प्रेमोन्माद को।

श्री चित्राजी : समुत्सुके ! यह आनन्द पाप-पुण्य समूहों के भस्मीभूत होने पर ही किसी भी प्राणी को संभव है। वेद-वेद्य परमानन्द का साकार-स्वरूप मिथिला की बीथियों में पदन्यास करता हुआ ललचाये लोचनों से बिहार करने के लिये प्रस्तुत है एवं अपनी प्राचीनतम प्रीति का प्रत्यक्ष प्रमाण देकर मैथिल प्रेमिकों के प्रेमान्न को अपनी आँखों के मुख से पीता सा प्रतीत हो रहा है। यह सब आप जैसी स्वरूप-शोधन तत्परा प्रेमपरायणा, अनन्य प्रयोजना, अनन्य-भक्ता की भक्ति का ही वैभव एवं चमत्कार है। विरह-वह्नि से पापों के बीज तथा श्रीराम दर्शन की अत्यन्त उत्कण्ठा से पुण्य के परिणाम प्रनष्ट हो जाने के कारण की आनन्दामृत का अम्भोधि अत्यन्त त्वरा के साथ आपकी ओर आकृष्ट होकर चला आ रहा है। जय हो, जय हो, जय हो, हमारी स्वामिनीजू की।

श्रीसिद्धिजी : चित्रे ! मेरे भीषण अपराधों का प्रायश्चित न होने से ही मुझे वैदेही व वैदेही-बल्लभजू से पृथक होकर अदर्शन की अपरिमित आँच से कुम्भकार के अंबा के समान तपना पड़ा है। आज श्याम सुन्दर के सम्प्रयोग से शान्ति का समनुभव अवश्य करूँगी किन्तु यह योग-लाभ मेरे किसी प्रकार की परिपक्व-भक्ति का परिणाम नहीं है अपितु आनन्द कन्द रघुकुलचन्द्र की अहैतुकी-अनुकम्पा का तथा प्रेम-मूर्ति मेरे प्रियतम की प्रीति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। तुम्हारा आहार तो केवल मेरी प्रशंसा का अन्न पाना हो गया है इसलिये रोकने पर भी तुम्हें मेरी व्यर्थ स्तुति करने का अधिक अभ्यास हो गया है, जो मुझे संकोच के गर्त में गिराने के लिये पर्याप्त कारण बन जाया करती है।

चित्राजी : अमानिनि! मुख्यतः महत जनों की कृपा व भुवन-भावन भगवान की कृपा-कणांश से ही प्रेममय जीवन का निर्माण व निखार होता है। यह बात सर्वथा सत्य है किन्तु पात्र की पात्रता का निरीक्षण करके ही उक्त महान विभूतियाँ उसमें प्रेम-रस को उड़ेल पाती हैं। यही कारण है कि क्वचित पात्रों में ही प्रेम का प्रकाश प्रदर्शित हो पाता है

अतएव मेरी वार्ता में व्यर्थपने की आशंका का आंशिक अंश भी नहीं है। अच्छा ! यह बात यहीं रहने दें। देखें तो सही, अयोध्यानाथ के आगमन में किया गया अग्नि-क्रीड़नक आकाश और अवनी को विविध रंगों के प्रकाश से प्रकाशित कर मानों अनेकानेक रंगों के तेज-पुंज वस्त्राभूषणों से भूषित कर रहा है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! पथ का प्रदर्शन प्रशंसनीय है। देखो न ! नर्तक-नर्तकियों के नृत्य, भाड़ों और विदूषकों के स्वांग तथा अन्य केलि-कर्ताओ की केलियाँ, इनके आकार-प्रकार द्वारा उत्सव में आनन्द का अधिकाधिक आन्दोलन उसी प्रकार चल रहा है जैसे पवन के सम्प्रवेग से सिन्धु में ऊर्मियों की उत्तालता का।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! आनन्द की राशि-राशि विखेरते हुये आनन्दकन्द के आगमन से आनन्द-सिन्धु में संलीन सभी नागरिक भूले मन से अपनी सम्पति को लुटा रहे हैं बिखेरे हुये वस्त्राभूषणों तथा मणि-माणिक्यों से ऐसी उपमा उत्पन्न हो रही है कि जैसे भूदेवी अपनी कन्या के श्वसुर की अवाई में नखशिखान्त वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर आदर्शमयी सेवा करने के लिये समुपस्थित हों। अहो ! आज की आँखों का सत्य तो यह कहता है कि मिथिला का जड़ात्मक-जगत भी चेतन की तरह आनन्द की अनुभूति कर रहा है। बुद्धि-विहीन पशु-पक्षी भी मिथिला की नर-नारियों की भाँति प्रसन्न वदन होकर अपनी नित्य चर्या को विराम दे दिये हैं। धन्य हैं श्याम सुन्दर रघुनन्दन के मन-मोहकत्व वैभव को।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! आनन्द-वायु के थपेड़ों से गिरता-पड़ता, झूमता-झामता समाज निवास स्थान की ओर बढ़ रहा है। देखो, देखो सबके सब जनवासे में उसी प्रकार प्रवेश कर रहे हैं जैसे सपरिवार सिंह अपनी गुफा में ! आली ! आर्यनन्दन जू का निवास अगर वहीं हुआ तब तो स्वतंत्रता पूर्वक सदा के सम्मिलन व सेवन से किंकरी को वंचित ही रहना पड़ेगा। कभी-कभी कृपा करके मेरे आँगन में जब आ जायेंगे तभी संतोष प्रद ननदोई की भेंट का लाभ ले सकूँगी मैं अन्यथा लोक-लाज तथा कुल-मर्यादा का अवरोध वैदही बल्लभ से मिलने न देगा। हाय ! हमारे प्राणनाथ के श्याम भाम मिलकर भी मुझे अच्छी तरह न मिल सकेंगे क्या ? (साश्रु) हाय ! मुझे अपने ननदोई की विरहवह्नि में अब भी झुलसना ही पड़ेगा क्या ?

चित्राजी : देवि ! भगवान राघवेन्द्र सर्वसार समन्विता सीताजू के साथ जनकपुर में प्रवेश इसलिये कर रहे हैं कि आपके अदर्शन की अग्नि से संतप्त उनका हृदय शीतल हो जाय अतएव समाज के साथ जनवासा में निवास करना उन्हें स्वयं अरुचिकर प्रतीत होगा। वे अवश्य आपके प्रियतम के प्रिय करने की प्रेरणा अपने गुरुजनों से प्राप्त कर सिद्धि-सदन के संन्निवासी बनेंगे। सिद्धि के अदर्शन की कल्पना उनकी आँखों से अश्रु प्रवाहित कर प्रेममूर्ति रघुनन्दन को गुरुजनों के सामने लज्जा-विहीन बनाने में समर्थ होगी। अस्तु, आप चिन्ता न करें, आपकी चिन्ता चिन्तामणि को स्वयं है।

श्री सिद्धिजी : चित्रा ! मेरे घर मनमोहन रहेंगे! इस कल्पना ही में अतीतानन्द की अनुभूति होने लगती है कि पुनः जब रसोल्लास पूर्ण रसिकेश्वर राम अपनी रसमयी लीलाओं की माधुरी का पेय पिला-पिला कर चिर-तृषा को तिरोहित करने का प्रयास करेंगे।

चित्राजी : मधुर–प्रिये! अब तो मधुर–प्रिया को मधुर–रस की मन्दाकिनी में निमज्जन करने का सुअवसर स्वयं आप श्री का अन्वेषण करता हुआ आपके आँगन में आ गया, समझीं आप ! आपकी भाग्य–विभूति का मर्म, लोक सृष्टा के समझ में आना जब असंभव है, तब अन्य का स्मरण ही क्यों किया जाय, जिसके गुणों के सागर की एक बूंद के आभास का प्रभाव संसार में पड़ने से जगज्जीव गुणज्ञ कहलाते हैं, वह आपके गुण–स्वभाव एवं प्रीति–रीति का स्मरण कर विभोर बन जाता है, अस्तु आपके आँगन में आकर त्रिभुवन पावनी गंगाजी के जनक विहरण करने में सुख की अनुभूति करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? अहो ! अजात शत्रु श्रीराम का शील जब उनके शत्रुओं को भी अनुकूल बनकर आनन्द का वितरण करता रहता है तो आप जैसी प्रेमिका की प्रीति को सुरक्षित रखना एवं अपने संयोग का सुख प्रदान करना उनके स्वरूपानुकूल ही है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! परम–तत्व को प्रसन्न करने के लिये जीव के पास स्वत्व सम्बन्धी कोई भी वस्तु नहीं है। सूक्ष्मदर्शी बड़े–बड़े तत्व–वेत्ता इस वार्ता की संपुष्टि करते हैं। अपनी अहैतुकी अनुकम्पा एवं सौजन्य से वह जिसे चाहे वरण कर उसके हृदय को अपनी विहार भूमि बना लें। मैं तो यही समझती हूँ कि मेरे प्रियतम का सम्बन्ध तथा नृपति किशोरी–किशोर की परम भास्वती कृपा ही मुझे मधुरातीत की माधुरी का अनुभव कराने में कारण है । धन्य है, भगवती कृपा को, जिसके बल से आज अभीष्ट आनन्द चारों ओर से मुझे आवृत्त कर अपने स्वरूप से अतिरिक्त मेरी स्थिति न रहने देगा। अहो! श्रीराम का सम्पर्क-सुख समस्त भौतिक–सुखों से अपना पृथक वैशिष्ट्य रखता हुआ अपने अतीतत्व का परिचय देता है।

चित्राजी : देवि ! अन्तर्भेदिनी–दृष्टि से देखा जाय तो आपका आनन्द आप से अलग कब था ? कहते नहीं बनेगा, आपके हृदय में भक्ति जन्य प्रेम का निरन्तर उदित रहना और प्रेमास्पद के हृदय में आपका प्रेम–विवर्धक परिश्रम देख कर कृपा का पूर्ण प्राकट्य हो जाना ही श्याम सुन्दर को सिद्धि कुँअरि के अधीन बनाने में हेतु है। आज प्रियतम से प्रसादित परमानन्द का अनुभव आप अपने परिकरों सहित करेंगी ।इसके लिये हम सबकी ओर से बधाई है, बधाई है, बधाई है।

पद : बजत बधाई श्री सिद्धिजू के अँगना।
प्राणनाथ लक्ष्मीनिधि आये, सियहिं लिवाइ भये मगना ।
सोहत संग मदनमन मोहन, दशरथजू के चारों ललना ।
सुनतहिं सिद्धि कुँअरि सुख सानी, अपने हृदय केरे गगना ।
नृत्य गीत वर वाद्य ते चित्रा, देति बधाई मणि–कंगना ।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! मेरी ही बधाई मनाती रहोगी कि ननँद–ननदोई के आगमन में आनन्दोत्सव मनाने में जुटोगी। देखो! यहाँ से अब स्वर्णिम समाज भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है अतः नीचे उतर कर ब्राह्मणों को दान–मान से संतुष्ट करें, बधाये बजवायें और नृत्य–गीत का आयोजन कर उत्सव को समृद्धिवान बनायें, ठीक है न ?

चित्राजी : स्वामिनीजू ! नगर के प्रत्येक घर सजे हुये उत्सवमय हो रहे हैं। आपकी सासुजी के सदन की ओर कितने–कितने विप्र–वृन्द जा रहे हैं और कितने वहाँ से सम्मानित होकर सहर्ष प्राप्त वस्तु को लिये हुये निष्क्रमण कर रहे हैं। पंचध्वनि हो रही है

और आनन्द के बधाये बज रहे हैं, यह सब आप ही की ओर से आप ही के यहाँ हो रहा है किन्तु आप श्री की इच्छा-पूर्ति का साधन शीघ्रातिशीघ्र करने को तैयार हूँ मैं। आनन्द में आनन्द ! अणु-अणु में आनन्द !

श्रीसिद्धिजी : चित्रे ! तन-मन-धन सब अपने सर्वस्व की सेवा में लगे तभी उसका साफल्य है। चलो, ससमाज शीघ्र चलें यहाँ से।

चित्राजी : चलें, स्वामिनीजू ! आपके पीछे आपका परिकर-वृन्द स्वयं चल देगा।

[श्री सिद्धिजी सबके सहित नीचे के खण्ड में उतरती हैं।]

पटाक्षेप

एक पञ्चाशः द्दश्यः ५१

[श्री विदेहजी महाराज ने जनवासा में ससमाज चक्रवर्ती जी महाराज को ठहराकर सबका सब विधि यथोचित सत्कार किया। सभी के लिए सुखाई सामग्रियों का औदार्य पूर्ण सुप्रबन्ध करके अपने विनयी स्वभाव से सभी संबंधियों के चित्त को प्रसन्न कर दिया, अन्त में जामाताओं को अन्तःपुर में निवास करने के लिए श्री अयोध्या नरेश से नम्रता पूर्वक प्रार्थना की; तदनन्तर आज्ञा को प्राप्त कर सम्पूर्ण पुत्रियों तथा जमाईयों को लक्ष्मीनिधि जी के साथ राज-सदन में भेज दिया। मार्ग में उतसव के सम्पूर्ण अंगों का आयोजन है। पंचध्वनि हो रही है।]

श्री किशोरीजू की आरती :

आरति कीजै जनक लली की।
आरति हरणि सबहिं सुखदायिनी, मिथिला सर के कमल कली की ।
श्वसुर पुरीते पितु पुर आयीं, कृपा विन्दु ते दुःख दली की ।
मातु-पिता भाभी अरु भैयहिं, सनिहैं सुख जय मोद थली की ।
हर्षण होइहि नई नित लीला, रस वर्षा वनि प्रेम पली की ।

[सासु श्री सुनैनाजू के साथ श्री सिद्धिजी परिछन-आरती करके श्री किशोरीजू से भेंट करती हैं। भेंट करते ही आनन्द विभोर हो जाती हैं, चित्रा सम्हालती हैं, इसी क्रम से सब पुत्रियों से मिलकर सुनैना-सदन में पाँवड़े बिछे हुए पथ से ले जाकर आसनादि देकर सविधि आरती उतारती हैं, तदनन्तर सानुजा श्री किशोरी जू को अंक में लेकर क्रमशः श्री सुनैनाजी प्यार करती हैं। भाभी-ननँद आलिंगनादि करके सुखी होती हैं। इतने में चारों राजकुमारों की अवाई सुनकर अपनी सासुजी व पारिवारिक-नारियों के साथ श्री सिद्धिजी बाहर जाकर अनुजों से युक्त श्री रामजी की आरती व परिछन कर प्रणाम करती हैं। दर्शन व स्पर्श प्राप्त होते ही प्रेम फूट-फूट कर नयन-मार्गों से निकलने लगता है। रामजी के चरण प्रेम-वारि से प्रक्षालन करके विभोर हो जाती हैं, पुनः प्रकृतिस्थ होकर श्रीरामजी का कर

पकड़कर अनुजों सहित श्री सुनैना-सदन में ले जाती हैं। आसनादि देकर सविधि पूजन करती हैं। श्री सुनैनाजी सानुज श्री रामजी को प्यार करती हैं, कुशल पूछती हैं, स्नानादि कराकर सबको उत्तम-उत्तम भोजन पवाती हैं पश्चात् सिद्धिजी ताम्बूल व गन्ध चारों कुमारों व कुमारियों को अर्पण करती हैं श्री सुनैना जू के आगे आनन्द-सिन्धु-निमग्ना सिद्धि जी लज्जा व संकोच से किसी से कुछ नहीं बोल रही हैं। धीरज साथ नहीं दे रहा है श्री रामजी व श्री किशोरीजू से सप्रेम सांकेतिक प्रार्थना कर अपने सदन पहुँचती हैं। वहाँ आतुरता के साथ बैठकर श्री लक्ष्मीनिधिजी के आने की प्रतीक्षा करने लगती हैं।]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! विदेह-वंश-वैजयन्ती-वैदहीजू के दर्शन ने अपरिमित आनन्द का अनुभव कराया आज। अहा ! इस लाभ के आगे अमृतोपम मोक्ष-सुख भी सदृशांश की संज्ञा न प्राप्तकर प्रत्युत सीठा ही लगता है। अहो! पूर्णतम ब्रह्म की अचिन्त्य एवं आह्लादिन्यादि त्रिधा शक्ति का समग्र विशुद्ध सत्वातीत स्वरूप जो अखण्ड सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म भाव है, वही सीता बनकर अपनी इस भाभी को सर्वथा अपना अनुभव कराने के लिये अवनि मण्डल में अवतरित हुआ है ऐसी प्रतीति मेरे मन से किंचित काल के लिये भी पृथक नहीं होती। धन्य है मेरे ननद का हार्द-स्नेह। मेरे आलिंगन से उन्हें अत्यन्त सुखानुभूति हुई जैसे उनको उनकी गई हुई सर्वस्व निधि मिल गई हो। हाय! श्री ललीजू के हृदय की तुलना में मेरे हृदय का तराजू उर्ध्वगामी ही सिद्ध होता है। हाय ....

[कहकर अपने प्रति श्री किशोरीजू की आत्यन्तिक-प्रीति का स्मरण कर मूर्छित हो जाती हैं। चित्राजी प्रकृतिस्थ करती हैं।]

चित्राजी : (प्रकृतिस्थ करके) ननन्दानन्द-वर्धिनीजू ! भाभी-ननँद की पारस्परिक प्रीति में अपूर्णत्व का अहर्निशि अभाव है, आज के सम्प्रयोग कालीन स्नेह का प्राकट्य उसी की अभिव्यक्ति है। ऐसी-ऐसी अभिव्यक्तियों का दर्शन वियोग के पूर्व संयोगावस्था में भी हमें कितनी बार पाने का सौभाग्य संप्राप्त हो चुका है। आप दोनों की प्रीति में न्यूनाधिक की कल्पना करना जब शेष और शारदा के मस्तिष्क का विषय नहीं है तब अन्य का तर्क करना अनधिकार चेष्टाकर गगन का सीमाँकन करने के समान बाल-बुद्धि का उपयोग करना ही कहलायेगा। स्वामिनीजू! लाल साहब के प्रेम भरे ललचाये लोचनों को आपकी ओर बार-बार जाते देखकर मैं वैदेही-बल्लभजू के अत्यधिक अनुराग का अनुमान लगाने चली किन्तु अन्त पाने की कौन कहे, थोड़ी दूर चलकर अचंचल हो गई, स्तब्ध हो गई, विभोर बन गई। पुनः मनमोहन की मन्द मुस्कान की माधुरी का पेय पीकर सामयिक संयोग जन्य आनन्द का अनुभव करने लगी। अहो ! असीमित, अप्राकृत तत्व को सीमित और प्राकृतिक आँखों से देखकर उसके पार पाने की कल्पना करना किसी के लिये भी मुझ जैसी अबोध-अबला के अज्ञान के समान है, पक्षी को आकाश का अन्त लेने के सादृश है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे! परमात्मा से नित्य युक्त जीवात्मा में परमात्मा की इच्छा से प्रकृति के संगानुसार ही संकल्प उठते रहते हैं। संकुचित नेत्र से मुझ पर बार-बार रघुनन्दन के दृष्टि-निक्षेप का अर्थ ही यह है कि मैं उनके मुखचन्द्र की चकोरी बन जाऊँ किन्तु सासु जनों के सम्मुख संकोच से मेरा घूँघट अपने आराध्य देव के दिव्य-दर्शन के

लिये न खुल सका। हाय ! गुरुजनों की दृष्टि बचाकर कभी–कभी मेरे देखने से आर्यनन्दनजू को भी असंतोष ही रहा होगा। हाय! कितनी परवशता! कितना संकोच! हृदय की अकुलाहट को भी लज्जा ने तिरोहित ही रक्खा ! हाय! मन में कितना संघर्ष है, कोलाहल है, चीत्कार है, पुकार है कि कब विविक्त स्थान में अपने प्रेम–पात्र ननदोई को प्राप्तकर सिद्धि, स्वसुख का सन्यास करके उनके सुख–संवर्धनार्थ पूर्ण खुले नेत्रों से निरखती हुई बार–बार कुशलता के प्रश्नों का आदान–प्रदान करेगी।

चित्राजी : योग–प्रिये! संयोग–सुख का आलोक आपके उरस्थल में आलोकित करने के लिये ही भानुकुल–कमल–दिवाकर का उदय मिथिला की प्राची दिशा में हुआ है। अब वह क्षण दूर नहीं जब राम–घनश्याम के समीप सिद्धि–दामिनी की दमकनि देखकर हमारा मन–मोर नृत्य कर–करके अपने प्रियतम के प्रेम में मत्त हो जायेगा। स्वामिनीजू! एकान्त–प्रिय को "एकान्तिक–सुख" सम्बोधन किये जाने वाले जानकी नाथ एकान्त में अपने सम्प्रयोग का समय देंगे ही क्योंकि वे उदार शिरोमणि भाव के भूखे एवं जन–सुख–सुखी रहने के सहज स्वभाव से संयुक्त हैं।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! मैं अपने प्रियतम विदेह–वंश–विभूषणजू का चरण स्पर्श तक नहीं कर पाई, भर–नेत्र दर्शन भी न कर सकी अतएव उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। प्राणनाथ आ जाते तो चिर–दिनों की तृषा उनके दर्शन–वारि से शान्त कर लेती मैं। पुनः पूजन करके प्रार्थना करती कि श्री सीताकान्त जू को आप अपने भवन में ही रखकर सेवा करने का प्रयास करें जिससे आपकी अनुगामिनी को उनके दर्शनाह्लाद की प्राप्ति मनमानी होती रहे अन्यत्र रहने से अपनी इच्छानुसार मिलने में अनेक विघ्नों की आशंका बनी ही रहेगी, श्री किशोरीजू मेरे समीप मेरे सदन ही में रहें, इसके लिये मैं स्वयं श्री सासुजी से प्रार्थना करके पूर्ण मनोरथा हो जाउँगी। यह मन में अधिकतम प्रतीति है कि श्री किशोरीजू का मन भी बिना भाभी के संग मज्जन, अशन और शयन के स्वस्थ और सुखी रहने की इच्छा न करेगा।

चित्राजी : पति–प्रिये! आपके प्राणनाथ आपके मिलने के लिये स्वयं आतुर होंगे। अपने भगिनि–भाम के स्वागत में संलग्न उनका चित्त जब समाधानता को प्राप्त हो जायेगा तब वे अपने प्रेमास्पद की प्रेरणा से अपनी प्रियतमा को मिलने का सुअवसर अवश्य प्रदान करेंगे ! मेरा तो ऐसा अटल विश्वास है कि सीताकान्त जू सिद्धि–सदन में अपना सन्निवास स्वयं चाहते होंगे। आर्ये ! उनकी इच्छाशक्ति की सामर्थ्य अप्रतिहत है। सत्य–संकल्प का संकल्प ही आप श्री के मन में संकल्प कर रहा है अतएव आप निश्चिन्त रहें, सीताग्रज भी आते ही होंगे।

[चित्राजी ऐसा कह ही रही हैं कि दासी का प्रवेश होता है]

दासी : (प्रणाम करके) स्वामिनीजू के जीवन की जै जैकार हो। सुनैना–नन्द–वर्धनजू की सवारी आप श्री के सदन की ओर आ रही है, यही समाचार लेकर आई हूँ, मैं।

श्री सिद्धिजी : आनन्द रहो दासी। अमृत का पूर्ण कुम्भ मेरे कर्ण पुटों में उड़ेल कर तुमने मुझे अमृत बना दिया। सम्पूर्ण दासियाँ स्वागत–सामग्रियों के साथ प्रत्येक आवरण में यूथ बनाकर उपस्थित हो जाँय। अविलम्ब आदेशानुसार सभी सेविकाओं को सूचित करने का कार्य तुम्हारा है।

दासी : जी स्वामिनीजू ! (प्रणाम करते हुये दासी का निर्गमन)

चित्राजी : स्वामिनीजू ! मिथिला–नरेन्द्र के कुमार अपनी कान्ता के हृदगत–भावों की पूर्ति के लिये अभी–अभी आ रहे हैं। पूजन–सामग्रियों से संयुक्त आरती का स्वर्ण थाल तैयार है, पाँवड़े बिछे हुये हैं शेष आवश्यक अनुमति आप श्री की चाह रही हूँ। कहिये क्या आज्ञा है ?

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम तो स्वयं समयज्ञा और कार्य–कुशला हो, दक्ष–सखी की संयोजना में भूल का अवकाश ही कहाँ? नृत्य–गीत और वाद्य–ध्वनियों के साथ हम सब अन्तःपुर के आवरण में चलकर प्राणनाथ को प्रणाम करें, और स्वस्वरूपानुरूप यथार्ह सम्मान के साथ निजी कक्ष में लाकर अपनी आयोजित अभिलाषाओं की पूर्ति करें, ठीक है न ?

चित्राजी : मानदे ! अपने आश्रितों का अत्यधिक आदर करना आपका नैसर्गिक स्वभाव है। जय हो अनुचरि–जन–पालिनीजू की। स्वामिनीजू ! समय हो गया है, निर्धारित स्थान में चलकर अपने जीवन धन की अगवानी करें।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! शीघ्र चलो.....

[सिद्धिजी पूर्ण सज्जा के साथ मिथिलेश कुँअर से मिलने जाती है, कुँअर के आते ही प्रेम–चिन्हों से चिन्हित होकर आरती उतारती हैं।]

मंगल मंगल गायोरी।
जय जय कहि सब सखी सहेली, सुरभ सुमन वर्षायोरी।
निमिपुर आये निमिकुलनन्दन संग सिय दूलह आयोरी।
आरति करि–करि लेहिं बलैया, धन्य जनक को जायो री।
हर्षण सिद्धि सदन रस वर्षी, आनन्द सिन्धु समायो री।

[तत्पश्चात् स्नेह–विह्वलाङ्गी प्राण–पति के चरणों में गिर पड़ती हैं। कुँअर प्रेम से उठाकर अश्रु पोंछते हैं पुनः आलिंगन कर आनन्द का विस्तार करते हैं। श्री सिद्धिजी पतिदेव के कराम्भोज को अपने कर–कमल से पकड़कर अन्तःपुर ले जाकर सिंहासनासीन कराती हैं, पाद्यादि देकर षोड़षोपचार पूजन–आरती कर मंगलानुशासन करती हैं, प्रणाम करती हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी उठाकर अपने आसन में बैठा लेते हैं सखियाँ सेवा साज लिये समीप में समुपस्थित हैं और अपने आराध्यों का दर्शन अतृप्त नेत्रों से अपलक कर रही हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ के पावन पादारविन्दों को पखार कर पावन बन गई मैं। आज मेरा अनुष्ठान सफल हो गया, अभिलाषा पूरी हो गई। मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गई प्रभो! इसलिये आप श्री को बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है। दासी को अत्यधिक उत्साहित समझकर निस्संकोच आज्ञा प्रदान करें, जिससे सामयिक करणीय कृत्यों में कमी न हो तथा आपके इच्छा की संपूर्ति सुचारुतया समय से सर्वभावेन हो जाय। दासी स्वस्थ और सुखी होकर सेवा कार्य के लिये ससमाज आज्ञा की प्रतीक्षा में उपस्थित है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे! वैदेही–बल्लभ के पतित–पावन चरणों का प्रेमी ही सत्यार्थ में सर्व–गुण–सम्पन्न है और वही वास्तव में भाग्य की अवधि का परिशीलन करता है अतएव आप प्रथम से ही कृतकृत्य हैं। अनुष्ठान की अपेक्षा आपको नहीं है। स्वयं के नाम की गुण–गरिमा को सर्वदा धारण करने वाली हैं आप ! रघुनन्दन का हृदय–सर्व–

भावेन आपका आवास हो चुका है, यह मैं भली-भाँति भगवान की भगवती भास्वती कृपा से जान गया हूँ अतएव श्याम सुन्दर की अमोघ सन्निधि की उपलब्धि तथा उनके चिन्मय धाम का वास आपको पाना शेष नहीं है। सर्व मंगल-विधायक एवं सर्वमलापहारक परम प्रेम, युगल किशोरी-किशोर के चरणों में तो आपका जन्म जात है। कहिये, हमारी अनुपस्थिति में कोई क्लेश तो नहीं हुआ? पति-प्यार के पावन पानी से सर्वदा सिंचित आपकी शरीर-बेलि हमारे विरह-वह्नि से मुरझाने तो नहीं पाई?

श्री सिद्धिजी : अन्तर्यामी भी अन्तर की मेरे मुख से ही जानना चाहते हैं क्या? नाथ ! प्रियतम के क्षणिक वियोग जंन्य वह्नि में संसार के सभी सम्भव सुख संप्रवेश कर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेते हैं और प्रेमिका की उरस्थली को संतप्त कर देते हैं क्या यह आप श्री से अविदित है कि पति-वियोगोद्भव दुःख के आगे संसार के सभी संकट नगण्य हैं। प्राणधन के विरह काल में प्रियतम की स्मृति तथा प्राणप्रिय ननँद-ननदोई के दर्शन पाने का दृढ़-विश्वास मेरे शरीर को सुरक्षित रखने में सक्षम रहा। आज के आनन्द में पिछली व्यथा की कथा सब भूल गई मैं। मूर्तित्रय का त्रैकालिक नित्य दर्शन त्रिकरण को रसमय बना देगा, यह कल्पना हृदय में कल्पनातीत आनन्द का विस्तार कर रही है। अपने जीवन-धन की कुशलता ही मेरी वास्तविक कुशलता है।आप श्री अपनी कुशलता का समाचार अपनी अनुचरी के तृषित-कर्णों को श्रवण कराने की कृपा करें। अनुरोध पूर्ण शिर नत किंकरी की यह प्रार्थना है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्राणवल्लभे! प्रियतम रघुनन्दन के नाम, रूप, लीला, धाम में किसी के उन्मुख हो जाना निरापद एवं पतन के भय से सर्वथा शून्य सुगम संशोधित मार्ग है जो अमृतानन्द की परिखा से आवृत्त है। पथिक ही के हृदेश में उस अपरिसीमित-आनन्द की अनुभूति होती है अन्य के असंभव है। प्रियतमे ! अयोध्या-प्रस्थान करते ही हर्ष की ध्वनि हृदय में ध्वनित होने लगी थी। पथ में श्याम सुन्दर रघुनन्दन के वास-स्थलों का दर्शन कर दृष्टि में एक नवीन दिव्यता, भावुकता और आर्द्रता आकर मेरे आकार का अपहरण कर लेती थी। कहीं-कहीं तो कौशल-किशोर की मन-मोहिनी मूर्ति मेरे चित्त की भीति पर चित्रित होकर भ्रम उत्पन्न कर देती थी। लगता कि मेरे प्यारे भाम अपने श्याल की अगवानी करने आ रहे हैं। अन्त में प्रमोद बन पहुँचकर मैं सच्चिदानन्दमयी पावन प्रकृति की प्रभा का प्रेक्षण करते ही आनन्द मूर्छा का आलिंगन करने लगा तदनन्तर सचिवों से समाधानित मैं श्री सरयू का दर्शन करते ही प्रेम के अतिरिक्त अन्य का अस्तित्व खो बैठा। श्री वाशिष्ठीजी के दर्शन-पर्शन और निमज्जन ने मुझे अपने भगिनि-भाम के सर्वस्व प्राप्ति का अधिकारी बना दिया । पूजन के परिमित प्रकारों की इति न हो पाई थी कि श्री सरोजाजी ने मुझ से समर्पित वस्त्रा-भूषणों से आभूपित होकर साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया और अपने अनेकाभिमत आशीर्वादों से अयोनिजा के भ्राता को भाव विभोर करके अन्तर्धान हो गई । अहा... ! वह आनन्द!

[स्मरण करते ही श्री लक्ष्मीनिधिजी बेसुध हो गये।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) प्राणनाथ की परमानन्द-प्राप्ति ही आपकी इस अनुचरी का परमानन्द है अतः प्रियतम की प्रियतमा श्रवण मात्र से उस सुख की समनुभूति से स्वामी के स्व को भूली जा रही है। अहा ! प्यारे की प्रेममयी यात्रा परमानन्द से ओत-प्रोत

थी, यह स्मरण जन्य आनन्द अन्तर्जगत में व्याप्त हो गया है अतएव मैं सच्चे सुख के साँचे में ढल गई हूँ। आनन्द ! आनन्द !! पूर्ण आनन्द!!!

[कहकर हर्ष से स्मृति-शून्य हो जाती है।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (सचेत करके) प्रियतमे ! "ततसुख सुखित्वम" की भव्य-भावना भामिनी के स्वरूप में मुझे साक्षात दृष्टिगोचर हो रही है। पति-पत्नी का ऐक्य एवं पत्यात्मा में स्वात्मा की सम्यक् अनुभूति का उत्तम आदर्श, दृश्यजगत में स्थापित कर आपने सबको संयमित बनने तथा स्वसुख का मूल से विसर्जन कर प्रेमास्पद के सुख में सुखी होने की दीक्षा दी है। मेरी आनन्दानुभूति की वार्ता श्रवण करते ही आप उसी प्रकार सुख का समनुभव करने लगीं जैसे मैंने उस समय सत्य-सुख का अस्वादन किया था। अहा ! धन्य हो गया मैं ऐसी प्रियतमा को प्राप्त कर। क्यों न हो, परमात्मा के प्रसाद की महिमा की इयत्ता का वर्णन वाणी भी नहीं कर सकती।

श्री सिद्धिजी : प्राणधन ! आपका प्रेममय व्यक्तित्व केवल अपने लिये नहीं है प्रत्युत प्रेमी और प्रेम का आदर्श उपस्थित कर लोक को प्रेम की पाठशाला में प्रवेश कराकर प्रेम-प्रशिक्षण के लिये है। श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण और वर्णाश्रम की सुसामञ्जस्य पूर्ण परिपूर्णता का उदय आप श्री के स्वरूप में हुआ है और वह इसलिये कि भाव-प्रधान-मानस की सामाजिक सुव्यवस्था भागवद्धर्म के प्रदेश में रहकर अत्यन्तानन्द की अनुभूति के लिये हो जाय। नाथ ! श्री सरयूजी के दर्शनोपरान्त आपका अवध प्रवेश हुआ होगा। संभव है श्याल का आना श्रवणकर भाम के भावोद्रेक ने आप श्री की अगवानी करने के लिये मेरे ननदोई को विवश कर दिया होगा। यह सब श्रवण करने के लिये मेरे प्यासे-कर्णों की अधीरता पूर्ण आतुरता अत्यधिक बढ़ रही है अतएव कृपा-मूर्ति के कृपा कण से इनकी तृषा शान्त हो जाती तो अत्युत्तम होता। दासी की बार-बार की हुई धृष्टता को क्षमा करेंगे, क्षमासिन्धु।

श्रीलक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! सौलभ्य-सौशील्यादि गुणों के सागर श्री सीताकान्तजू ने स्वाभाविक अपने अनन्त औदार्य से प्रेरित होकर सानुज ससमाज श्री सरयू के पुलिन पर अपने श्याल से मिलकर आनन्द की उर्मियों से सबके स्व-ज्ञान की गठरी को गहरी सुख की खाई में गिरा दिया। प्रेम-वितरण की संतोषजनक प्रणाली एक श्याम सुन्दर रघुनन्दन ही में है, प्रिये ! श्याल-भाम के सम्मेलन में आत्मा को जो आनन्द मिला वह वाणी का विषय नहीं है। सुर एवं सुर-सुन्दरियों का समाज व्योम से सुरभित-सुमनों की वर्षा करता हुआ जयघोष से अन्तरिक्ष को शब्दायमान कर रहा था। निशानों की चोट अलग ही आनन्द का वितरण कर रही थी, अवनी में पंचध्वनि सुर-नर-मुनि सबके मानस में राग का संचार कर रही थी। युगल-दल की भेंट के उपरान्त शत्रुञ्जय नामक गजराज में चढ़ाकर श्री रामजी महाराज स्वयं चढ़े हुये मुझको नगर ले गये। गृह-गृह में आनन्द के बधाये बज रहे थे। नगर-दर्शन एवं नगर-वासियों का अपनी ओर आकर्षण देखकर अतीतानन्द में जब भूल जाता मैं तब वैदेही-वल्लभ अपने अंग का आश्रय देकर सचेत करते। श्री चक्रवर्ति चूड़ामणिजी तथा श्रीरामजी की समस्त माताओं का जो प्यार मुझे प्राप्त हुआ, उसे कैसे व्यक्त करूँ। वह अनिर्वचनीय है। कृपा-विग्रहा श्री किशोरीजू से समस्त अनुजाओं समेत जब मैं मिला तब पारस्परिक प्रेम ने मूर्तिमान होकर मन को अपने में विलीन कर दिया। अहा ! आनन्द ! महा आनन्द!! परम आनन्द!!!

[कहकर श्री लक्ष्मीनिधिजी तन्मयता को प्राप्त हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) प्यारे ! सामासिक सम्वाद की सुधा-पूर्ण सत्ता जब मुझे सुखार्णव में संप्रवेश दे रही हैं तब वैस्तारिक व्याख्यान की माधुरी का माहात्म्य मनसागोचर ही होगा। प्राणधन ! कुछ और अमृत इन श्रवणों मे उड़ेल देने की कृपा हो, इन्हें अतृप्ति का ही आभास हो रहा है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! जिसका संकल्प मन नहीं कर सकता ऐसे आनन्द की सृष्टि त्रैलोक्य मोहन श्याम सुन्दर रघुनन्दन के किसी भी अंग से अहर्निशि क्षण क्षण वर्धमान होती हुई दृष्टिगोचर होती रहती है तदनुसार आश्रित-जन विरोधि-वर्ग दलनकारी सौन्दर्य सागर के साथ मज्जन-अशन और शयन नित्य-नित्य करता हुआ मैं लक्ष्मीनिधि नहीं रहकर राम हो गया। अहा! मैं उस अव्यक्त आनन्द को किसी युक्ति या , दृष्टान्त से कैसे व्यक्त करूँ? आप स्वयं अनुमान की आँखों से उस आनन्द का दर्शन कर लें। एक दिन मेरे श्याम भाम ने अपने श्याल को अपने प्रेमराज्य के सिंहासन में बैठाकर अपने अश्रुजल से अभिषेक किया था, तदनुसार आपको राज्ञी पद पर प्रतिष्ठित कर अपने को कृतकृत्य समझा था। प्रिये ! इस प्रकार नित्य नव-नव आनन्द में निमग्न रहने से समय का पता ही न लगता था। यहाँ से श्रीमान् दाऊजी का संदेश लेकर मंत्रीजी के जाने पर ही मिथिला आने की तैयारी हुई और यथा समय आपकी अभीष्ट वस्तु लेकर आपके समक्ष पहुँच गया। यह सब चर्चा समयाभाव के कारण अत्यन्त सूक्ष्म में मैंने की है समय आने पर अपनी प्रियतमा से पूर्ण चर्चा के आनन्द का आस्वाद लूँगा।

श्रीसिद्धिजीः जीवन धन! विपुल-विभिन्नताओं से युक्त इस विराट विश्व को विमोहन करने वाले वैदेही-वल्लभजू ने प्रेम-सृष्टि के शीर्षक पद पर हमारे प्रियतम को प्रतिष्ठित किया है, यह उनके प्रेम-विज्ञान का वैशिष्ट्य है। स्वजनों को समाज में समुन्नतशील बनाने की निष्ठा का निर्पेक्ष निर्वाह है। अप्रतिम औदार्य का आदर्श है और अनुरागी को स्वसर्वस्व समर्पण कर देने की कलात्मक क्रिया है। नाथ ने गागर में सागर भरकर अल्प समय में ही अपनी अवध-यात्रा के आनन्द का अवगाहन अपनी अनन्य सेविका को करा दिया है यह आपकी महानता एवं उदारता है । समय आने पर साकेत में सीताकान्त के सम्प्रयोग जन्य सुखात्मक चरित्रों की चित्रावली मुझे बिना दर्शन कराये मेरे देव नहीं रह सकते, ऐसी मुझे परम प्रतीति है। आज तो चरित्रवान चित-चोर के साक्षात सुविग्रह के दर्शनानन्द से पृथक होने के लिए देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि और आत्मा को अल्पावकाश भी नहीं है। प्यारे ! कुछ प्रार्थना करने की स्फुरणा हो रही है, कह नहीं पाती, कहिये तो कहूँ।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : कर्त्तव्य-परायिणे ! आपके कार्य सभी स्वर्णार्ध होते हैं। अपनी आत्मा से भय और संकोच क्या करना? आप अपने मन की वार्ता अविलम्ब कहें। उचित उपायों से आपके अभीष्ट की पूर्ति का उपक्रम करके ही तो आपके पतिदेव का पतित्व सुरक्षित रह सकता है।

श्री सिद्धिजी : मेरे सर्वेश्वर ! मन का महान मनोरथ यह है कि श्याम सुन्दर रघुनन्दन का निवास यदि आप अपने भवन में रखें तो अत्युत्तम हो। सेविका को सर्व सेवायें सुलभ होंगी और आप श्री को परमैकान्तिक संयोग-सुख की संप्राप्ति होगी अन्यत्र के आवास में रहने से हाय... मुझे सीताकान्तजू से मिलने में कितनी-कितनी बाधाओं का

व्याघात सहना होगा। मेरी विनय प्राणनाथ को अनुकूल लगे तो मुझे सफल मनोरथा बनाने की कृपा करें।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे! आपका मनोरथ स्वयं सिद्ध है, श्रीराघवेन्द्र जू की स्वयं इच्छा अपने श्याल के सदन में सन्निवास की है। श्रीमान पिताजी से भी मुझे कुछ न कहना पड़ा। प्रीति-पारखी पिताजी ने श्रीराम जी के रहने का स्थान रामजी की इच्छानुसार ही चुना है उन्होंनें मुझे यह आज्ञा दी है कि रघुनन्दन निमिनन्दन के निवास में रहेंगे तथा भरतजी, लक्ष्मणजी व शत्रुघ्न जी का निवास अन्य-अन्य भ्राताओं के घर इसलिये होगा जिससे सेवा में कोई त्रुटि न हो। मैं आपसे मिलने तथा यही शुभ-संदेश सुनाने के लिये ही यहाँ आया हूँ। अब आप यहाँ स्वागत-सामग्रियों का संग्रह करके आनन्दकन्द की अगवानी के लिये ससमाज अन्तःपुर के अन्तिम आवरण तक पहुँचेंगी मैं अम्बाजी के भवन से अपने भाम को लिवाकर अविलम्ब आ रहा हूँ।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ के बिना मेरे हृदय में हर्ष का आन्दोलन कौन करेगा। आप श्री की करुणा, करुणा कन्द कौशल-किशोर की कृपा-भगवती को प्रेरित कर मेरे ननदोई को सिद्धि-सदन का संन्निवासी बना रही है। रघुनन्दन आपकी बाट जोहते होंगे अतएव आप वहाँ जाकर शीघ्र ही उन्हें यहाँ लेकर आने की अनुकम्पा करें।

[श्री लक्ष्मीनिधि जी का आवश्यक सूचनायें देकर प्रस्थान]

पटाक्षेप

द्विपञ्चाशः दृश्यः ५२

[श्री सिद्धि कुँअरिजी अपनी अलियों व अनुचरियों से आवृत्त अन्तःपुर के अन्तिम आवरण में श्री रामजी के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। स्वागत-सामग्रियाँ सभी के कर-कमलों में शोभा दे रही हैं, प्रकाशमय आवरण में अनेक कलाकारों के कला-कौशल्य का निदर्शन विविध रचनाओं से किया गया है, पंच ध्वनि हो रही हैं। सभी के प्यासे लोचन श्याम सुन्दर रघुनन्दन की ओर लग रहे हैं। इतने में ही रत्नयान से श्री वैदेही-बल्लभजू पधार गये। श्री लक्ष्मीनिधिजी ने उन्हें करावलम्बन देकर भूमि में उतारा और स्वयं दोनों करों में चमर-छत्र लेकर कैंकर्य करने लगे। श्री सिद्धि कुँअरिजी ने प्रेम में पगकर गीत गाती हुई श्री रामजी की आरती उतारी ...]

आरती : आरति राम रसिक की कीजै। मंगल गाई जन्म-फल लीजै ....
आई अवध ते श्याम सुन्दर वर, श्वसुर पुरिहि कीन्हे सुख की घर
श्याल सहित सरहज रस भीजै। आरती ....
रस की रस हैं सिया सलोनी, राम रसिक रसप्रद रस भौनी
भरि भरि पेट रसहिं रस पीजै। आरती ....
नख-शिख वस्त्र विभूषण साजै, शोभा कहत सरस्वति लाजै
शशि शत काम वारि सखि दीजै। आरती...
सिद्धि-सदन करि है रस केली, प्रेमी परिकर सकल सकेली,
हर्षण निरखि निरखि जग जीजै। आरती...]

पुनः बहुत-बहुत मणि-माणिक्य एवं बहुमूल्य वस्त्राभूषण न्यौछावर कर द्रव्यग्रहीताओं को दान दिया। पुनः - गदगदवाणी से मंगलानुशासन करके प्रणाम किया। चरणों में लिपटी हुई प्रेम-मूर्ति सरहज को श्रीरामजी ने प्रेम विभोर होकर उठाया तदनन्तर दम्पति ने श्रीरामजी को उत्सव के साथ अन्तःपुर लाकर स्वर्ण-सिंहासन में बैठाया और सविधि पूजन करके निर्निमेष श्यामली मूर्ति का दर्शन करते-करते संमोह को प्राप्त हो गये। श्रीराम जी महाराज ने प्रकृतिस्थ करके अपनी सरहज और श्याल को प्रेमपूर्वक अपने पास बिठाकर चित्तापहारी-चितवनि एवं मधुर-मधुर मुसकान से युक्त होकर कुशल-प्रश्न पूछना आरम्भ किया।

श्रीरामजी : प्राणप्रिये कुँअर-कान्ते ! कहिये कुशलता के अंक में आप निशिवासर निश्चिन्त शयन तो करती रहीं न ?

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) श्याम सुन्दर ! कुशलता के मूल-स्रोत तो श्री चरण-कमल हैं, उनके बिना प्रपन्न के चित्त-चञ्चरीक को चैन कहाँ ? कौशल-किशोर के कोमल-कोमल अरुणिम-अरुणिम युगल पद-तलों के दिव्य दर्शन से आज किंकरी कुशल स्वरूप होकर सुख की सीमा में संप्राप्त हो गई है जिसके कौशल्य की चिन्ता, चिन्तामणि कौशल किशोर को है, उसकी कुशलता के विषय में क्या कहना है।

श्रीरामजी : (साश्रु) प्रेम-पण्डिते! प्रेम के अधीन मैं भी आपके अभाव से अयोध्या में न रहकर अन्तरंग मन से आपके समीप ही रहता था। कभी-कभी स्वप्न के संसार में स्थित होकर जब आपसे बात करता या वियोग की स्मृति में हा कुँअर-वल्लभे ! कहकर ऊँची आवाज में चीख मारता तब निद्रा-वियुक्त-स्थिति में बड़ी लज्जा लगती, लगता था कि कोई सुन लिया होगा, तो क्या कहेगा।

श्री सिद्धिजी : भक्त-भावन के भाव-साम्राज्य से ही सब भक्तों के हृदय में भावनास्पद के प्रति भव्य-भावना का बीज उद्‌भासित होता है अतएव अपने प्रेम सिन्धु की एक बिन्दु ही स्वजनों के समीप आप समझें। मैं जब-जब अपने और आपके हार्दस्नेह का अन्वेषण करती हूँ, तब-तब अपने में आपके अनुराग की आंशिक आसक्ति न देखकर कृतघ्ना के समान स्थिति में स्थित हो जाती हूँ किन्तु धन्य है, आप श्री के औदार्य को सौशिल्य-सौलभ्यादि गुणों का निर्पेक्ष निर्वाह करने के लिये आप अपने जन के अशांश अनुराग को अधिकतम गिनकर अपना परम प्यार प्रदान करते हैं। जय हो श्री जानकी-बल्लभलालजू की! उदार शिरोमणे! आपके औदार्य ने ही सिद्धि को अपनाकर अपनी कहने के स्वर्णिम सुअवसर का देन दिया है।

श्रीरामजी : प्रिये ! आपके प्रेम का परिमिताङ्कन करना प्रेम की परख न होने का सही-सही पूर्ण प्रमाण है। आप मुझे प्रेम-सिन्धु की संज्ञा से विभूषित करके स्वयं बिन्दु बनती हैं, यह आपका नैच्यानुसंधान स्वरूपानुरूप है परन्तु जब मैं आपके प्रेम-बिन्दु में प्रवेश करता हूँ, तब सारा का सारा सिन्धु, बिन्दु के किस कोने में समाकर स्वस्वरूप को भूल जाता है, मैं नहीं जान पाता। स्त्री-समाज में सदैव उच्च स्तरीय पावन-प्रेम की धवल-धारा प्रवाहित करने के लिये आपकी आदर्शमयी जीवनपद्धति है जिसके स्पर्श से जनक के जामाई के जीवन में सौख्य, साम्पन्य , समृद्ध और सांतुष्टय के साथ मानवीय मूल्यों की चरम प्रतिष्ठा उतरकर आ गई है जैसे कुम्भकार की इच्छानुसार घट का और भक्त

के रुच्यानुसार भगवद्रूप का निर्माण होता है। मैंने यहाँ आपको विस्तृत बड़ाई देने के अभिप्राय से कुछ नहीं कहा है जैसी मेरे मन की अनुभूति है वैसी ही वार्ता का विनयोग तो मैं कर सकूँगा।

श्री सिद्धिजी : (संकुचित मुद्रा में) भद्र! आपकी वाणी ही अमृत है, सत्य है, प्रकाश है, उसके अनुभव के समक्ष मुझे जब मोक्ष भी सीठा लगता है तब त्रिवर्ग का विवेचन ही व्यर्थ है परन्तु प्यारे से पूँछती हूँ मैं, कि ब्रह्म-विद को मायामय जगत, ब्रह्म प्रतीत होता है कि नहीं ! प्रेमियों की दृष्टि प्रेम ही का प्रेक्षण करती है कि नहीं? ऐसे और अनेक प्रश्न हैं किन्तु यहाँ पूँछकर अप्रयोजनीय को व्यर्थ में प्रयोजनीय पद पर प्रतिष्ठित करना है। कार्य तो दो प्रश्नों के उत्तर में ही चल जायेगा। जाने दें, मैं इसका उत्तर भी नहीं चाहती जैसी हूँ, आपकी हूँ और आपके अतिरिक्त इस किंकरी में कुछ नहीं है, न मैं हूँ न मेरा। कहिये यहाँ से अयोध्या चले जाने पर प्यारे ननदोई अपनी सरहज को भूल तो नहीं गये थे। शीघ्र यहाँ आने की आशा देकर इतना विलम्ब करने का क्या प्रयोजन था ? क्या अवध में अपने श्याल के सम्पर्क से सिद्धि-सदन में बसने वाली उनकी किंकरी को आप अपनी किंकरी नहीं समझे?

श्रीरामजी : राजकुमारिके ! अपनी आत्मा को यत्न करने पर भी विस्मरण नहीं किया जा सकता। बड़े-बड़े अमलात्मा आत्माराम मुनि भी जब अपनी आत्मा में रमण करना नहीं भूलते तो राम अपनी आत्मा को क्यों भूल जाय। आप ऐसी सलोनी सरहज को आपका श्याम राम अपनी स्मृति के आसन में सदा आसीन रखता है। प्रिये ! ऐसा प्रश्न और उत्तर अपने और आपके बीच में अटपटा और द्वैत का दर्शन कराने वाला लगता है। छोड़ें इस विषय को। आपको देखने के लालची-लोचन विलम्ब से अपने विषय को ग्रहण कर पाये हैं, यह बात सत्य है किन्तु "गुरुजनों की लज्जा तथा मिथिला चलने के लिये, मिथिलेश कुँअर के आग्रह करने पर भी श्रीमान दाऊजी को उन्हें रोक लेना अवरोध के कुशल कारण थे अन्यथा लगता था कि, पक्षियों की तरह पंख होते तो क्या अच्छा था, उड़कर मिथिला की माधुरी का आस्वादन प्रतिदिन कर आया करते। अविलम्ब न आने से आपकी व्यंगोक्तियों का सहना उचित ही है। मैं जानता हूँ कि विरहार्ता का आर्ति पूर्ण हृदय व्यङ्ग की माधुरी मेरे श्रवण-पुटों को पिला रहा है जो अत्यधिक प्रीति का लक्षण है और मुझे अभीष्ट है।"

श्री सिद्धिजी : (रामजी के पैरों को पकड़कर) रघुकुल-तिलक! आपके इन पावन-पादारविन्दों के स्पर्श व प्यार करने के लिये प्राण छटपटा रहे थे क्योंकि यही इनके अकेले आश्रय हैं। अपने अभयदानि-करारविन्दों का स्पर्श पाने और करने को आत्मा की ललक और ही थी। हाय! कैसे-कैसे लगता था, क्या कहूँ कहते नहीं बनता। इसी प्रकार मधुरिम मुखाम्भोज के दिव्य-दर्शन की अत्यन्त कामना मेरे इन युगल नेत्र के भौंरों को थी क्योंकि एक मात्र इनके लिये अनेक भोग-विलासों से परिपूर्ण विस्तृत-विशाल राज्य के समान आप श्री का अनुपम आनन ही है, अन्यावलोकन की अभिरुचि को अन्तर्मन ने निर्बल ही नहीं अपितु निर्जीव बना दिया है। आज अपने ननदोई के दर्शन व स्पर्श से कृतकृत्य हो गई, जन्म सफल हो गया। आपकी अहैतुकी-कृपा-भगवती ने किंकरी को बिना परिश्रम के आत्म-भोजन भरपूर दे दिया है, अब मैं अपने भाग्य-वैभव की उपादेयता आप श्री की सेवा में समझकर अष्टकालीन कैंकर्य करती हुई रसिक शिरोमणि के

सुख–समृद्धि का संवर्धन ही परम पुरुषार्थ समझूँगी। अहा ! अब तो रस ही रस की नित्य वर्षा हुआ करेगी, खूब पियेंगी और खूब पिलायेंगी। प्यारे ! मेरी व्यंग वचनावली द्वारा किया हुआ किंकरी का अपराध क्षमा करेंगे। अहो, माधुर्य के मक्खन में कंकड़ी डालने का प्रयास मेरा न था अपितु माधुर्य के वार्धक्य के लिये था।

श्रीरामजीः रस प्लुते ! कैसी महत्वपूर्ण आपकी आशा–आकांक्षा और भव्यभावना है। राम के रिझाने के लिये भव–भिन्न भाव ही सारतम विशिष्ट वस्तु है क्योंकि आपका यह राम भाव का ही भूखा है। आपने अपने भव्य–भाव का भोग्य पवाकर राम को परम संतुष्ट कर लिया है। मैं भी आपके अधीन इसलिये हो गया हूँ कि रसिक को अन्यत्र अप्राप्य अनन्त रस की प्राप्ति , आपके समीप सहज ही सुलभ है अन्यथा देव–दुर्लभ इस रस के द्वारा रसिक की उदर–पूर्ति कहाँ होती जैसे क्षुधातुर अन्न–क्षेत्र की ओर उन्मुख होकर आतुरता के साथ शीघ्र पहुँचकर क्षेत्र–प्रदत्त भोजन का अनुभव चाहता है वैसे ही अयोध्या से चल कर आपके पास पहुँचने की मेरी स्थिति थी। हम और हमारे श्री मिथिलेश–कुँअर जब एकान्त पाते तब आपकी एक मात्र चर्चा हम लोगों के कालक्षेप का विषय बन जाती थी। कभी–कभी हम लोगों को आपकी स्मृति आपके चरित्र का चित्र खींचकर चित्त को मन मुग्ध कर देती थी फिर तो नयनों में नींद का नाम नहीं, कर्ण–प्रिय आपकी मधुर चर्चा करते–करते सवेरा हो जाता था। हमारे हृदय–निवासी श्याल–सरहज जब एकान्त में बैठकर हमारी चर्चा करेंगे तब श्याल–मुख से श्रवण करने पर श्याल–वधू को स्वयं पता चल जायेगा कि आपके अदर्शन–काल में आपके राम की क्या दशा थी। आप अपनी स्थिति का अभिन्न प्रतिबिम्ब अपने ननदोई के शरीर–दर्पण में पड़ा हुआ जानकर राम की विरह–व्यथा का अनुमान स्वयं कर सकती हैं।

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) प्यारे ! जो हमारे भीतर स्थित है, जो हमारी आत्मा है जिसके बिना हमारा अस्तित्व असम्भव है वह हमसे अभिन्न आप श्रीराम ही हैं, जिन्हें जगज्जीव प्राणाधिक प्रिय मानते हैं। आप श्री का प्रेम–वैलक्षण्य आपके स्वरूपानुरूप है। आपके इस अलौकिक और अतीत–प्रेम के कणांश से ही संसार में प्रियता प्रदर्शित होती है। जो जीवों के जीने का उपाय बनकर जीवन–प्रेम प्रदान करती है अन्यथा नीरसता के कारण नीरवता के शुष्क अशान्त प्रदेश में आह की अग्नि लगकर संसार को भस्मीभूत कर दे। हृदय–हरण का हार्द–स्नेह अपने ऊपर जितना है, उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। वह मेरे गुण, साधन, सेवा व प्रेम का प्रभाव नहीं है प्रत्युत सीताकान्त के सहज स्वभाव से आया है। जय हो.... प्रेम–स्वरूप प्रियतम की।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! प्राणों के प्राण कौशल–किशोर अपनी स्वरूप–सुधा का समग्र अनुभव कराकर माधुर्य–महोदधि में निमग्न कर दिये हैं, यह उदार शिरोमणि की उदारता है। हम लोगों का स्वरूप आप श्री के मंगलानुशासन के लिये सर्वदा तत्पर रहना ही है अतएव जिससे अनंग–मोहन–अगों को अनिद्रा–वश आलस्योत्पादक–कष्ट का अनुभव न करना पड़े, वह उपाय करने में विलम्ब न होना चाहिये क्योंकि आज आप अयोध्या से चलकर आने के कारण श्रमित हैं।

श्री सिद्धिजी : नाथ ! आपका उत्कृष्टतम–भाव एवं अपने प्रेमास्पद के देह की चिन्ता, प्रेमियों के हृदय के अनुकूल है। मुझे भी श्याम सुन्दर की शयन झाँकी का झरोखा

से दर्शन लेने के लिये अन्तः से कोई प्रेरणा दे रहा है किन्तु क्या कहूँ, इन स्वार्थी ज्ञानेन्द्रियों को। नेत्र चाहते हैं कि नयनाभिराम नील मणि को नेह भर निरखते रहें, श्रवणों को सीताकान्त के मुख-चन्द्र से विनिस्मृत मधुर-मधुर वाणीसुधा का स्वाद आसक्त कर रखा है, कर चाहते हैं कि सुख-कन्द के कमनीय चरण-कमलों को सुहलाते ही रहें, नासिका को ननदोई के वारिज-वरण-वपु की गन्ध, गन्धोन्मादित बनाकर विराम लेने की इच्छा ही नहीं उत्पन्न होने देती। रसना की कथा ही क्या कहूँ राघव के रसना-रस से सिक्त चर्वण किये हुये पान पाने की तृषा ही शान्त नहीं हो रही है उसकी। प्रभो! यह सब होते हुये भी स्व-सुख का सन्यास करके वैदेही-वल्लभ को शयन-कुंज में ले चलना चाहिये। सुखसम्बर्धक-शयनासन को किंकरी ने स्वयं अपने हाथों से लगा दिया है। चलने की देर है। अहो! धन्य हो गई मैं आज। अपने सदन में सोये हुये सीताकान्त के पद-कमल सेवन का स्वर्णार्ध-समय मुझे संप्राप्त हो गया। जय हो सिद्धि-सदन बिहारी श्याम-सुन्दर रघुनन्दन की.....!

श्री लक्ष्मीनिधिजी : राम-प्रिये! आपका अनुराग तथा तन्निर्वाह आदर्श, आदरणीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है। आपके हार्द-भाव को समझने के लिये श्रवण, अध्ययन, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता है यदि स्नेह-शीला के स्नेह-शीलत्व का समुचित संचार, संसार में हो जाय तो सारी सृष्टि सदाचार से संयुक्त होकर सीता-वल्लभजू के प्रेमियों की समाज बन जाय, लोकोत्तर प्रेम की झाँकियाँ प्रत्येक स्थान पर रामानुरागियों को झाँकने के लिये सुलभ हो जायँ।

श्री सिद्धिजी : (श्रवण दबाकर संकुचित-मुद्रा में) आर्य! क्या कह रहे हैं आप। श्री किशोरीजू व रामजी के परिकरों के प्रति आपका अविच्छिन्नानुराग ही आपको अपनी किंकरी के प्रशंसा में नियुक्त कर दिया है क्यों न हो। तदीयत्वानुराग तज्जनों में होना स्वरूपानुरूप है किन्तु मैं कुछ हूँ व मेरा कुछ है, यह विचार मेरे मन में सर्वथा असत्य से अतिरंजित है, जो निर्पेक्षोपाय हैं, जो सबके संसृति-जन्य-कष्ट के शमन करने के लिए स्वयं कटिबद्ध हैं, जो जीव को प्राप्त करने के लिये सृष्टि रचते हैं और जो कष्ट तथा परिश्रम सहकर अनेक अवतार लेते हैं तथा चेतनात्माओं को अपनाने के लिये अनेक यत्न करते हैं, वही करुणा-वरुणालय अपने जनों के हृदय-भवन में प्रेम का प्रकाश करते हैं, वही प्रपन्न भक्त के उर में आर्तित्व, अकिंचनत्व और अनन्य-गतित्व की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं; वही आश्रित-प्राणियों के हृदय में प्रेम की प्रतिमा बनकर सृष्टि को प्रेम के रंग में रंग देने में समर्थ हैं। मेरे प्राणधन! सिद्धान्त में वही प्रेम है, वही प्रेमी है और वही प्रेमास्पद है। मैं, मेरा असत्य है, अंधकार है और मृत्यु है।

श्रीराम जी : कुँअर-कान्ते! वीणा-पाणि वाणीजी की बुद्धि आपकी वाणी का स्पर्श करती होगी, कहा नहीं जा सकता। आपके वचन सारतम तथा सत-श्रुति, शास्त्रानुमोदित स्वरूपानुरूप हैं किन्तु परम बुद्धिमान आपके बल्लभ विदेह-वंश विभूषणजी के वचनों में भी सार-गर्भित-रहस्य अन्र्तहित है। प्रिये! द्वैताद्वैत-शून्य, शुद्ध, विशिष्ट ब्रह्म के साथ समरस बने रहने वाले भक्त ही वास्तव में भक्ति-सुख का अतिशयानुभव करने के लिये स्वयं भक्त और भगवान का भेद अपने में बनाये रहते हैं अर्थात वही भक्त हैं और वही भगवान हैं किन्तु यह बात बिना सच्चे सतसंग में घुलमिल गये सबके समझ में नहीं आती। अस्तु सतसंग स्वरूप श्री आपके आत्मदेव परम तत्व के तथ्यों को

भली–भाँति अब धारण करने के कारण प्रपन्न भक्ता पत्नी के स्वरूप को भगवत तत्व से पृथक न समझते हुये ही यह कहे हैं कि आपका अनुगवन और अनुकरण करने से सारी सृष्टि प्रेमियों की समाज बन जायेगी , मैं भी उनकी इस अलौकिक वार्ता का पूर्ण समर्थन करता हूँ।

श्रीसिद्धिजी : (हँसकर कटाक्षपात से श्यामसुन्दर का मनहरण करती हुई संकुचित मुद्रा में) चलिये....चलिये, अब शयन–कुंज में सोने का समय हो चुका है। मैं समझ गई जैसे श्याल तैसे भाम, दोनों एक– दूसरे की वार्ता को ही तो पुष्ट करेंगे, हमारी संगिनी केवल किशोरीजू तो हैं, हैं न चित्रे? आप दोनों की देह भर केवल दो दीखती हैं बाकी मन चित, बुद्धि और आत्मा में अल्प अंतर भी नहीं है वैसे ही हम व किशोरीजू एक हैं। समय साथ देगा तो हम अकेले न सही दोनों मिलकर आप श्री को कभी खूब छकायेंगी।

श्री रामजी : (मुस्कुराकर) मनोरमें! हम छकने के लिये ही तो यहाँ आये हैं। आते ही हम आपके दर्शनानन्द में छक गये, छक रहे हैं और छकेंगे, है न चित्रा जी।

चित्राजी : श्याम सुन्दर! आज आप शयन करें, अगले दिनों में आपके प्रश्नों का निपटारा करूँगी।

श्री सिद्धिजी : (श्रीराम जी का हाथ पकड़कर) प्यारे! पधारें, अब शयन करने के लिये, आज आप श्री को यात्रा में कितना कष्ट हुआ होगा।

[श्री सिद्धिजी, रामजी को शयनासन में ले जाती हैं और बैठाकर हाथ–पाँव दबाने लगती हैं, परस्पर कुछ–कुछ मूर्तित्रय बातें कर रहे हैं।]

पुनः श्री सिद्धिजी : प्यारे ! आप श्याल–भाम दोनों शयन करें मैं श्रीकिशोरी जू के समीप सेवा में जाती हूँ। माताजी से प्रार्थना कर उन्हें अपने शयन–कक्ष में सोने के लिये ले आना चाहती हूँ क्योंकि एक साथ एक तत्व होकर सोये बिना हम दोनों को अलग–अलग सोने से अनिद्रा की भूतिनी, भय से भरकर सबेरा करा देगी।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : सीता प्रिये! यहाँ श्रीरामजी की सेवा में मैं हूँ ही।आप अवश्य श्री किशोरीजू के पास शीघ्र जायं। हम दोनों में से एक भी उनकी सेवा में इस समय नहीं है। खैर, आज अभी अम्माजी के सम्मिलन का आनन्द उन्हें धैर्य बँधाये होगा।

श्री सिद्धिजी : जो आज्ञा नाथ की होगी, वही शिरसा वहन करूँगी।

[सिद्धिजी सेवा व शयन–आरती कर श्रीरामजी व श्री लक्ष्मीनिधिजी को प्रणाम कर प्रभु–स्नेह का स्मरण करती हुई प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

त्रय पञ्चाशः दृश्यः ५३

[श्री सिद्धिजी, श्री सुनैना–सदन में श्री अम्बाजी के समीप जाकर श्री किशोरी जू से सादर सस्नेह मिलती हैं। अपनी ननँद की रुचि जानकर उन्हें अपने कक्ष में शयन करने के लिये लेकर जाने की प्रार्थना अपनी सासुजी से करती हैं। अभिमत आयसु को प्राप्त कर लाड़िलीजू को स्व–सदन की

सुन्दर सुखमयी शय्या पर शयन करने के लिये पाद-प्रक्षालन कर तथा दुग्ध-पान कराकर पौढ़ा देती हैं व पद-सेवा स्वयं करने लगती हैं।]

श्री किशोरीजू : भाभी जी! आप मुझसे बड़ी हैं तथा मेरे पैरों में पीड़ा भी नहीं है अतएव आप भी यहीं मेरे साथ पड़ जाँय। आपका पैर दबाना मुझे रुचिकर नहीं लगता। पड़े-पड़े आलिङ्गनादि प्रेम की प्रक्रियाओं को परस्पर कर-करके आनन्द की अनुभूति करें तथा जिसके लिये मेरा जी छटपटा रहा था उन प्रेम-वार्ताओं का आदान-प्रदान एक-दूसरे को करें ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू! मैं कब कहती हूँ कि मैं आपकी बड़ी भाभी नहीं हूँ। बड़ी भाभी हूँ, इसलिये अपनी दुलारी ननँद की पथ की थकान, पैरों को दबाकर दूर कर देना चाहती हूँ। परिश्रम-जन्य शरीर की पीड़ा को अपने कर-स्पर्श की कला से दूर करने की प्रक्रिया मुझे अच्छी तरह आती है। आप शान्त थोड़ी देर लेटी रहें। हाय! आज शिविका में चढ़े-चढ़े बहुत ही परिश्रम हुआ होगा कहिये, मेरे कर का कठोर स्पर्श कमल-कोमल सिरस-सुकुमार श्री अंङ्गों को दुःख तो नहीं दे रहा है। आपके प्रति अमल अनुराग वर्धिनी प्रेम की प्रक्रियाओं का आश्रय लेना तो मेरा सर्वस्व है वह होगा ही।

श्री किशोरीजी : कैसे कह रही हैं भाभीजी! आपका कर-स्पर्श मुझे अमृतोपम आनन्द का अनुभव करा रहा है। मैं समझती हूँ कि आपके कर को कमल की उपमा देकर अनुपमेय का अपमान ही करना है। आपकी रुचि और सुख ही तो मेरी इच्छा व आनन्द है किन्तु अब बहुत हो गया, मैं पूर्ण स्वस्थ हो गई।

[श्री किशोरीजी उठकर बैठ जाती हैं और सिद्धिजी का हाथ पकड़कर उन्हें अपने निकट बैठा लेती है। चित्रा मसनद लगा देती है।]

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू ! अब तो आप श्री के शयन का समय हो गया है किन्तु आप बैठ क्यों गईं ? अनिद्रा का अवलम्बन लेना अस्वस्थकर है।

श्री किशोरीजी : भाभी जी ! आपके दर्शनाह्लाद के कारण नयनों से निद्रा देवी का निष्क्रमण-सा हो गया है। अम्माजी के समीप हम दोनों परस्पर की चर्चा से वंचित ही रहीं। एक हृदय के प्राणियों का हार्द-स्नेह पारस्परिक प्रेम विनिमय से ही वृद्धिंगत होता है। लगता है कि हृदय खोलकर हम दोनों कुछ कालतक, एक-दूसरे की कही हुई बातों को सुन-सुनकर सच्चे सुख की अनुभूति करें।

श्री सिद्धिजी : प्यारीजू! मेरी आँखों में भी नींद नहीं है आपसे एकान्तिक वार्तालाप न होने से, असंतोष के काँटे चित्त में चुभ रहे थे किन्तु आप श्री सुख से सो जाँय। यह सुख मेरे असन्तोष को बिलकुल दबा रखा था। आपके संकल्प को कोई शक्ति निरस्त नहीं कर सकती अतएव हम दोनों प्रेम चर्चा कर चरम आनन्द का अनुभव करें।

श्री किशोरीजी : भाभीजी! आज हमारी आँखों की उदासी आपके दर्शनानन्द से दूर हो गई। अब तक आपकी स्मृति में अश्रु-विमोचन करती हुई व्याकुल बने रहना इनका काम था। आज आपके हृदय से लगी हुई मैं आनन्द के पालने में झूल रही हूँ। अहो! मिथिला के दर्शन करते ही जब आपकी मैथिली स्वर्ण-सुख की समनुभूति करने लगी थी तब आपके दर्शन-स्पर्शन एवं प्यार को प्राप्त कर कितने अवर्णनीय आनन्द का अनुभव मेरे हृदय में होता होगा, आप स्वयं अनुमान कर सकती हैं।

श्रीसिद्धिजी : आह्लादिनीजू ! रामजी के रसमय स्वरूप के सामने आते ही ब्रह्मविद-वरिष्ठ महाराज मिथिलेश एवं और-और बड़े-बड़े अमलात्मा-आत्मज्ञानी मुनियों के मरे हुये मन भी जीवित होकर, आपके प्रियतम के स्वरूप की एक-एक वस्तु पर मुग्ध हो गये थे, यह किसी से अविदित नहीं है। आप श्री ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न के चन्द्रमुख की समग्र सुधा का पेय अखण्ड पियेंगी, यह कल्पना मन को क्षणिक कल्पनातीत आनन्द का अनुभव कराकर तिरोहित हो जाती और वियोग की स्मृति अपने प्रभाव से चित्त,मन, बुद्धि को प्रभावित कर शोक के सागर में अहर्निशि निमग्न किये रहती थी। आज आप श्री के शत-शशि-विजित वरानन को देखकर, इस चकोरी को आनन्द की अनुभूति हुई है। अहा! आज मेरी निधि मुझे मिल गई, आज मुझे आत्म-दर्शन का आनन्द प्राप्त हो गया, आज मैंने सिद्धि प्राप्तकर, सिद्धि-नाम को चरितार्थ कर लिया और संसृति का समूल संहार करने वाली अयोनिजा के साथ शयनकर शान्ति के सागर में समाविष्ट हो गई। आप श्री की कृपा बिना जीव को जागतिक-विभूतियों की प्राप्ति, आत्मा और अनात्मा का बोध तथा पूर्णतम परब्रह्म रघुनन्दन श्रीरामजी के अहैतुक सकल विधि-कैंकर्य की प्राप्ति कदापि किसी काल में किसी साधन द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती। जय हो सर्वेश्वरीजू की, जय हो जय हो।

श्री किशोरीजी : भाभीजी! भैया के द्वारा श्रवण-गोचर होते ही आपकी विरह-वेदना की विकट परिस्थिति ने आपकी ननँद को मूर्छित बना दिया था। क्या करूँ? नारी का सहज परतन्त्र जीवन, अपनी स्वरूपानुरूप इच्छा की भी पूर्ति, अपने अधीन न समझकर असमर्थ बना रहता है।

श्री सिद्धिजी : (प्यार करती हुई) प्रेमेक्षणे ! अपनी भाभी के प्रति आपका अकारण प्रेम अतुलनीय है जिसकी इयत्ता आप श्री को भी अविदित है। कृपामयी करुणा वरुणालया किशोरीजू की अहैतुकी अनुकम्पा से ही सिद्धि के हृदय-सरोवर में आपके प्रति स्नेह का यत्किंचित जल भरा है। प्राण-प्रियतमा श्री लाड़िलीजू को नैहर की स्मृति, विस्मृति की शय्या पर शयन करा देती थी। हाय! कितना अधिक स्नेह जिसे शत-शत सुरेन्द्र की साहबी का सुख भी विस्मरण कराने से विमुख रहा। पल-पल में नये-नये सौन्दर्य का समुद्र अधिकाधिक अपने आकर्षण से वैदेही के चित्त में चित्रित मिथिला के चित्र को न धो सका, प्रत्युत उसने नया निखार, नयी चमक और नया रंग देकर नई माधुरी प्रदान कर दी है। माधुर्य का महोदधि, मैथिली के मन-मीन को मुग्ध करके भी मिथिला की माधुरी की महिमा व मिठास की स्मृति से चित्त को अचंचल न कर सका, अपितु चंचलता में प्रगति उत्पन्न कर निमि-कन्यका को निमिपुर की निवासिनी बना दिया। कहिये, किशोरीजू! अयोध्या में रहकर आनन्द की असीमता का भी खूब अनुभव करती रहीं ?

श्री किशोरीजी : इष्ट-प्रिये ! जिस सुख-समुद्र में आपका मन-मीन सतत किलोल किया करता है, जिससे विलग होने की कल्पना आपको मृत्यु की विभीषिका से अधिक भय उत्पन्नकर स्मृति-शून्य बना देती है, उस आनन्दाम्भोधि में आपके चित्त के साथ मेरा चित्त भी अपने सखा के साहचर्य को प्रकट करता हुआ अलौकिक आनन्द का अनुभव करता रहा किन्तु नैहर के नेह की स्मृति , उस आनन्द से अतिरिक्तता का अनुभव न कराती हुई, आत्मा में एक वैलक्षण्य उपस्थित कर देती थी। वियोग की परिस्थितियाँ

जिसके स्नेह व स्मरण से होती थीं, वह उस आनन्द की प्राप्ति का हेतु मुझे प्रतीति में आने लगा था। भाभीजी को इस रहस्यार्थ के समझने में कोई कठिनाई नहीं है, यह मैं भली-भाँति जानती हूँ कि आप परोक्षवाद एवं छायावाद की भी विशद विदुषी हैं।

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू ! आप श्री के श्वसुर देव, समस्त सासुयें, सम्पूर्ण देवर व श्रीरामजी अपने यथोचित प्रेम-पूर्ण व्यवहार से आपको प्रसन्न तो रखते रहे तथा आप श्री के सहज स्वभाव से सभी सन्तुष्ट रहते रहे न ?

श्री किशोरीजी : (सकुचाती हुई मन्द मुसकान से) भाभीजी ! आपकी प्रगाढ़-तम-भावना एवं तीव्रतम इच्छा थी कि मेरी ननँद को, अलौकिक-आनन्द का सिन्धु सर्व ओर से आवृत्त किये हुये अपने अङ्क में लेकर आसक्त-मना अठखेलियाँ खेलता रहे, तथा श्वसुर-पुरी के सर्वस्वजन अपने अत्यन्त स्नेहामृत का पेय पिलाकर लली का लालन-पालन करते रहें, तदनुसार आपके संकल्प का समुज्वल-विकास वैदेही को सदा सुख स्वरूप बनाये रहता है। सभी सम्बन्धी स्व-सम्बन्धानुसार भव्य-भावना से भरे हुये, अपने प्राणों की प्रियता का परित्याग कर, मेरे हित और प्रिय करने में परायण व विभोर बने रहते हैं। मेरे सम्बन्ध मात्र के संस्मरण से सभी चरम-सुख का समनुभव करते हैं तो मुझे देखने, छूने सूँघने से परमानन्द की कैसी अनुभूति उन लोगों को होती होगी, आप अनुमान कर सकती है। यह सब आपकी भावना-भूरुह का परिपक्व फल है जिसमें रस के अतिरक्त और कुछ नही है। यदि अयोध्या को अमृत-पुरी कहें तो भी पुरी का पूर्ण प्रभाव प्रस्फुटित नहीं होता। सत-चिद-आनन्द की तरह और-और अलौकिक विशेषण देकर पुरी को पुकारें, तो भी आंशिक महिमा की ही आवृत्ति होगी। हाँ, यदि उपर्युक्त समस्त सारतम अप्राकृतिक विशेषणों की माला अयोध्याजी के गले में पहनायें, तो वाह्य निरूपण कुछ संतोषजनक प्रतीत होता है किन्तु अन्तरंग तो अति गंभीर है, कोई गहरे पानी में पैठने वाला ही समुद्र की गहराई का अनुमान एवं उसके तली में पड़े हुये रत्नों का पता लगा सकता है।

श्री सिद्धिजी : ज्ञान-नेत्रे! श्री अयोध्याजी का अन्तरंग स्वरूप क्या है ? आप श्री के मुख्-विनिस्मृत तद्-विषयक प्रकाश पाने की प्रबल इच्छा है।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! जैसे ईक्षु-रस का अन्तरंग स्वरूप उसकी मधुरता एवं मिठास है, अग्नि का अन्तरंग स्वरूप उसकी दाहकता शक्ति है और ब्रह्म का अन्तरंग-स्वरूप उससे अविनाभावी सम्बन्ध रखने वाली उसकी अचिन्त्य सामर्थ्य संयुक्ता अनादि परमाह्लादिनी शक्ति है, उसी प्रकार अयोध्या का अन्तरंग स्वरूप मेरी मातृ-भूमि मिथिला पुरी है। इस रहस्य का अभिज्ञान अयोध्या की अधिष्ठातृ देवी को भली-भाँति प्राप्त है अतएव अयोध्या और मिथिला के एकत्व में ही आत्यन्तिक आनन्द का अधिकतम निखार संभव है।

श्री सिद्धिजी : सारज्ञे! देही और देह संघात का समन्वय ही सृष्टि है। अयोध्या और मिथिला का एकीकरण ही परम पद का साक्षात् स्वरूप है। सृष्टि जब अपनुरावर्ती परम-धाम में प्रविष्ट हो जाती हैं तो समाविष्ट-सृष्टि का सृजन नहीं होता। अपार संवित्-सुख-समुद्र में वह सदा के लिये संलीन हो जाती है। गौर-तेज के बिना श्याम-तेज की उपासना भावनास्पद भगवान के रस-स्वरूप को दृष्टिगोचर कराने में सक्षम नहीं होती। इसके विपरीत गौर-तेज की भक्ति, श्याम-तेज के बिना भी रसमय श्याम सुन्दर

के स्वरूप का दिव्य–दर्शन कराने की सामर्थ्य से सदा संयुक्त रहती है। हमें तो इसकी केवल आत्मानुभूति ही नहीं हैं, प्रत्युत इन्द्रिय अनुभव का इतना आधिक्य है कि वह आत्मानुभव के लिये किंचित् समय ही नहीं देता। श्री–मुख से गाई हुई मथिला की मधुर महिमा अक्षरशः सत्य है तभी तो साकेत का अधिष्ठातृ–देवता अपनी अयोध्या के बहिरंग–रूप में रमण करता हुआ अतृप्ति की अनुभूति के कारण अन्तः प्रवेश करके आनन्दाम्भोधि में निमज्जन करने की आतुरता से भर गया और त्वरा के साथ अयोध्या की अन्तरंगा–मिथिला पुरी में प्रवेशकर बहिरंग–स्वरूप को भूल गया, आनन्द विभोर हो गया। कमल–कोष का मकरन्द पी–पीकर मत्त बन गया और चिर–शान्ति के सागर में समाविष्ट हो, समस्त मिथिला को अनन्तानन्द के सिन्धु में निमग्न कर स्वयं निमग्न हो गया।

श्री किशोरीजीः भाभीजी ! आपकी भव्य–भावना का विकास ही तो श्याम–गौर–तेज के रूप में आपके आंगन में अपने से आकर आपके संकेत से आपकी मनोमयी–लीलाओं का अनुकरण करता है। वस्तुतः हमारी भाभी के हृदयाकाश ही में अयोध्या–मिथिला एवं श्याम–गौर तेज सन्निहित है, उसी अन्तर्बीज का विशेष विकास नयन–पथ का पथिक बना है।

श्री सिद्धिजी : किशोरीजी ! वास्तविकता बिहँसती होगी आपके विवेचन–वैलक्ष्यण्य से कि नहीं ? आपको अपनी भाभी को मान के शिखर पर चढ़ा देना बहुत प्रिय लगता है न ? समीक्षण करने पर वास्तव में अदृश्य–शक्ति की अहैतुकी असीम–अनुकम्पा का साक्षात् स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है, उसी की प्रेरणा का यह प्रत्यक्ष प्रभाव है कि अपात्र में पात्रता का अनुसंधान आप श्री को होने लगा है अन्यथा सिद्धि–सदन में श्याम–गौर–वपु वालों का विहार अति दुर्लभ था।

श्री किशोरी जी : भाभीजी ! हम और नहीं जानतीं हमें आप अत्यन्त प्यारी लगती हैं बस ! श्याम–गौर तेज से तेजस्विनी बनी हुई, तेज की उपादेयता सिद्ध कर लेने से ही आप श्री का नाम सिद्धि है। तेज को कार्य में लाने वाला न हो तो तेज का होना उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे दृष्टा की अनुपस्थिति में दृश्य का।

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू ! अब आप शयन करें, रात्रि बहुत व्यतीत हो गई है। अगले दिन आप से और–और अनेक बातों को करके अपनी पिपासा शान्त करेंगी।

श्री किशोरीजी : भाभीजी का प्रिय करना अपना कार्य है, रात्रि भी शेष ही है। शरीर की अवहेलना न करके अवश्य निद्रा देवी की गोद में जाना चाहिये। जिससे कैंकर्य में अवरोध न हो।

[दोनों साथ–साथ एक ही पर्यङ्क पर शयन करती है]

पटाक्षेप

- - - - - - -

चतुष्पञ्चाशः दृश्यः ५४

[सायं का सुहावना समय है, श्री किशोरीजू के साथ सुन्दर आसन में श्री सिद्धि कुँअरिजी बैठी हैं। चित्रादि सखियाँ एवं दासियाँ सेवा में उपस्थित हैं। संगीत–सुधा से सबका मन–मानस लबालब भरा हुआ अपने

स्वर-लहरियों से समीपवर्ती प्रान्त को अमृतमय बना रहा है। भाँति-भाँति की वाद्यकला एवं भाव-भंगिमा से भरी हुई नर्तन-क्रिया का सुख-समृद्ध सीमा अतिक्रमण कर रहा है।]

पद : चन्द्रकीर्ति चितचोर हमारे।

रघुकुल कमल सूर्य हित जग के, प्रकटे अवध मझारे।

सिया-प्रभा बिनु सूर्य कहै को, तेहिते मिथिला पधारे।

सीतहिं ब्याहि प्रभाते पूरे, कीन्हे लोक सुखारे।

हर्षण भानु प्रभा की जोरी, युग-युग जियै पियारे।

[भाभी और ननँद चन्द्रकीर्ति रघुनन्दन की कीर्ति अमल-संगीत के माध्यम से श्रवणकर प्रेममूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं। पुनः चित्राजी के उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ होकर आपस में वार्तालाप करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू ! कौशल्यानन्द-वर्धनजू की लावण्य लीला का लालित्य लोकप्रिय तो है ही, साथ ही प्रेम-समाधि में सहज ही समाविष्ट कर देने वाला भी है। अहो! चरित-चन्द्रिका से निर्झरित सुधा की मधुरता एवं मिठास अनुपम और अनिर्वचनीय है जिसमें नव-नव आनन्द के उत्पादन की पर्यवसिति ही नहीं है, श्रवण-पुटों से जितना भी पीते जाँय, श्रवणवन्तों को अतृप्ति का ही अनुभव होता है, उनको लगता है कि पद-पद में नवीन-नवीन स्वाद और अधिक-अधिक आनन्द की अनुभूति अनन्त-कल्पों तक करते ही जाँय।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! चरित्रवानों के चरित्र का चित्रण दृष्ट-चित्ता-पहारी होता ही है यदि चरित्र नायक कहीं स्वयं अलौकिक हुआ तो उसके लोकातीत चरित्रों को कहना ही क्या है, अमृतार्णव का कल्लोल अमृत ही होता है। काम की क्रीड़ा काम-कला के कौशल्य से जैसे कामोत्पादक ही होती है वैसे ही सच्चिदानन्द की सच्चिदानन्दात्मक लीला, सच्चित, आनन्द तथा विनय, विवेक और वैराग्य का विस्तार करने वाली होती है। मैं अपने भ्रातृ-भार्या से सत्य कहती हूँ कि कहीं श्रुतियों के समझ में न आने वाला रस-संज्ञक-ब्रह्म रसराज की प्रतिष्ठा से अलंकृत होकर अवनी में अवतरित हो तो उस रसिक-शिरोमणि का सम्पूर्ण चरित्र रस से ओत-प्रोत होगा और वह अपनी लीला से अवनी और आकाश को एक कर के अवश्य रस के माधुर्य-महोदधि में निमग्न कर देगा। उस द्रष्टव्य वस्तु के वास्तविक दर्शन से द्रष्टा सब ओर से स्पृहा शून्य होकर अपनी चित्त-वृत्ति वस्तु में विलीन किये बिना नहीं रह सकता। रस में आकण्ठ निमग्न चेतन, रस को अपनी ज्ञानेन्द्रियों का विषय बनाकर रसिक संज्ञा की समुपलब्धि करता है तत्पश्चात तदाकार- वृत्ति के विस्तार से स्वयं रस-स्वरूप हो जाता है। भाभीजी स्वयं इस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, अनुमान, आगम और आप्त-वचनों के विवेचन करने का प्रयोजन यहाँ अनावश्यक है।

श्री सिद्धिजी : रसज्ञे! "रसो वै सः" वेद-वर्णित ब्रह्म की सवाङ्गीण साक्षात् मूर्ति तो सीता रमण श्रीराम ही हैं। यह परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज के वचन मिथिला के नर-नारियों के हृदय में केवल उतर ही नहीं गये प्रत्युत पौर प्रजा को प्रत्यक्ष अनुभूति कराके युगपद रसिक और रस बना दिये हैं, तभी तो सौन्दर्य-सुधा के

सारतम सागर में मिथिला निमग्न होकर माधुर्य–महोदधि की मधुरिम–मिठास का अनवरत अनुभव करती हुई आनन्दमयी हो गई है। रसमय रसिकाधिराज रघुनन्दन श्रीरामभद्रजू की जै हो, जै हो, जै हो।

श्री किशोरी जी : भाभीजी यह तो बतलायें, रस आगे उत्पन्न हुआ कि रसिक? रस–सृष्टि रसिक के लिये हुई है या रस के लिये रसिक की रचना हुई है।

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू! जब से भोक्ता उत्पन्न हुआ तब से भोग्य भी हुआ और जब से भोग्य की उद्‌भूति हुई तब से भोक्ता की भी। दोनों का अन्योन्य अविनाभावी सम्बन्ध है। दृश्य है तो द्रष्टा है, दृष्टा है तो दृश्य । दृश्य नहीं तो द्रष्टा नहीं और द्रष्टा नहीं तो दृश्य नहीं। विचार करने पर वास्तव में द्रष्टा, दर्शन और दृश्य जैसे एक ही परम तत्व हैं, वैसे ही रस, रसिक और रसानुभूति एक ही वस्तु है। अपनी रसानुभूति के लिये अनादिकाल से वेद वर्णित रस–स्वरूप परम तत्व ही स्वयं दो संज्ञाओं में विभक्त हो गया, एक को रस कहते हैं, दूसरे को रसिक। किन्तु वे दोनों परस्पर रस और रसिक बनकर एक–दूसरे का रसास्वादन करते रहते हैं।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! तब तो रसिकिनि–मिथिला और वह रसाम्भोधि एक ही तथ्य तत्व है। आप तो केवल नील कलेवर वाली अयोध्या व अयोध्यावासियों को बड़ा बना रही हैं, हमारी कनक कलेवर वाली मिथिला और मैथिल–मैथिलानियों को नहीं। अहो! जिसको आप वेद–प्रतिपाद्य रस बता रही हैं, वही हमारे भैया का प्यार पाने तथा प्यार करने के लिये ललचीले–लोचनों से लालायित बना रहता है। मैंथिली–रस का रसिक, रस ग्रहण करते हुए भी अतृप्त दृष्टिगोचर होता है, उस के रसलोलुपताका पर्यवसान ही नहीं है। भाभी के विषय में कहना ही क्या है। आप अपने अनुमान एवं अनुभव से अच्छी तरह समझ सकती हैं कि वह 'रस' रसिकिन के रस का कितना उच्चतम रसिक है। मैं तो कहती हूँ कि मेरी मिथिला रस की रस है और रसिक साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ राज्ञी है।

श्री सिद्धिजी : राम–बल्लभे! अवश्यमेव आप श्री रस की रस हैं तभी तो रस के लोलुप श्रीराम बिना बुलाये, कमल के पास मधुकर की तरह दौड़े चले आये! आप श्री से मैं एक बात पूँछना चाहती हूँ वह यह है कि क्या मैं श्री सीताकान्त की सहज सुख समृद्धि में वार्धक्य लाने की कुछ पात्रता रखती हूँ इस विषय का अभिज्ञान आप श्री को है क्या ? अपनी सरहज का अनुभव सीतारमण के सुख का संवर्धन करता है क्या ? अहो! अपनी बुद्धि द्वारा अन्वेषण करने पर किंकरी में ऐसी पात्रता का परमाणु भी अप्राप्त रहता है।

श्री किशोरीजी : प्रबुद्धे! आपकी प्रश्नावली का उत्तर आप श्री को अपेक्षित नहीं है क्योंकि स्वयं का एवं स्व–स्नेही के सत्य–स्वरूप का वास्तविक–बोध भाभीजी को भली–भाँति है। परस्पर आनन्द के आदान–प्रदानार्थ आपके ननदोई का हृदय आप के समक्ष खोलकर रख रही हूँ। मेरी भ्रातृ–वधू अनुभव की आँखों से अवलोकन करें। स्यादि नामों के कहते, श्रवण करते और स्मरण करते ही साकेत बिहारी, सिद्धि–प्रेम से प्लावित होकर मन से सिद्धि–सदन के कोहवर–कुंज में पहुँच जाते हैं और वहाँ की, की हुई क्रीड़ाओं को चित्ताकाश में वर्तमान की तरह देखने लगते हैं। केवल देखते ही नहीं, अपनी सरहज के चित्त को अपने चित्त का विषय बनाकर तदाकार बन जाते हैं और समीपस्थ मुझे अपने अंक में

लेकर, हे किशोरीजू! हे लाड़िलीजू! इत्यादि सम्बोधनों का उच्चारण कर-करके आपकी तरह मेरा दुलार करने लगते हैं। वार्तालाप करते-करते कभी-कभी आपकी तरह मुझसे विनोद करने लगते हैं। प्रयत्नपूर्वक उपचार से ही प्रकृतिस्थ हो पाते हैं, सचेत होने पर, "आप अभी कहाँ थे ? कौन थे? क्या कह रहे थे ?" पूँछने पर संकुचित मुद्रा से युक्त अपनी आँखों से वारि-वर्षा करने लगते हैं। आनन्दकन्द के आनन्द का विवर्धन करने वाली आपकी चर्चा है। विनोद एवं आमोद-प्रमोद में वार्धक्य लाने के लिये मैं भी तिरछी तकनि तथा मन्द-स्मित के साथ कहती थी कि वाहवा श्याम वपु वाली हमारी भाभीजी। अहा ! कितना सौन्दर्य ! कितना माधुर्य ! अहो ! श्याम कमलिनी के गंध से गन्धोन्मादित हमारे भैया भौतिक कार्य करने में असमर्थ ही रहेंगे। सुनकर नील कलेवर की नीलिमा में भैया के ध्यान से भैया के गौर-वपु का प्रतिबिम्ब पड़ने से श्याम-गौर की समिश्रित-आभा एक अलग और अद्वितीय अभिव्यक्ति उत्पन्न कर देती थी। समय-समय पर सखियों के हँसने और हँसाने की सामग्री उक्त स्थिति बन जाया करती है। चन्द्रकलाजी आपके चारु-चरित्रों का वर्णन कर-करके चन्द्रकीर्ति की आत्मा में अत्यधिक आनन्द का विस्तार किया करती हैं। मैं तो आपकी आनन्दमयी चर्चा करते ही न जाने कौन सी स्थिति में स्थित हो जाती हूँ चाहते हुये भी कुछ कह नहीं पाती। मेरी भाभी अपने प्रश्नों का संक्षेप उत्तर पाकर अपने प्रति की हुई अपने ननदोई की प्रीति की इयत्ता का पता लगा सकती हैं क्या ? मैं तो समझती हूँ कि स्वयं प्रेमास्पद अपनी प्रेमिका के प्रति स्व-प्रीति का अंकन करने में असमर्थ ही रहेंगे।

[श्री सिद्धिजी, श्रीरामजी की प्रेम दशा को श्रवण करते ही प्रेम-मूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं। श्री किशोरीजी स्पर्श द्वारा प्रकृतिस्थ करती हैं। सचेत होने पर साश्रु...]

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! अपने ननदोई की कृपा एवं अनुराग अपने सरहज के ऊपर जितना है, उसका अनुमान लगाना सिन्धु की उर्मियों की संख्या कर लेने का बाल-चापल्य है। जानते हुये भी मेरा प्रश्न करना प्रेम-सुख की समृद्धि के लिये था, संशयाच्छन्न होने के कारण नहीं। लाड़िलीजू ! आपके वल्लभ जू के नाम, रूप, लीला और धाम की स्मृति परा-भक्ति के प्रदेश में पहुँचाकर प्रेमास्पद, प्रेम और प्रेमिक के भेद को भंग कर देती है। त्रिपुटी के विनष्ट होने पर जिस आनन्द की अनुभूति होती है उसे एक मात्र स्नेही का हृदय अनुभव करता है किसी प्रमाण के द्वारा, अव्यक्त को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अहो ! रसमय-रूप-सुधा का स्रोत कोहवर-कुंज में बहते देखकर, मैंने दृगों के द्रोणों से खूब पिया, खूब पिया किन्तु पेय की क्षण-क्षण वर्धमान नव-नव नवीनता अपनी मन-मोहिनी माधुरी के कारण मेरी तृषा को पर्यवसिति नहीं होने देती। अहा ! कितना सुन्दर स्वाद है, श्याम सुन्दर की सुधा का सिद्धि-सदन के सरोवर में भरा हुआ वह रूपामृत सुर-सुन्दरियों के मन को ललचा रहा है। सिद्धि के सौभाग्य का सूर्य श्री किशोरीजू की कृपा से उदय होकर त्रिभुवन के तम को दूर करने की सेवा के लिए ही केवल हो सो नहीं अपितु अपने किरण-समूहों में स्थित रस की विपुल वर्षा कर रसिक-जनों की खेती को हरी-भरी सदा करता रहे, यही एक कामना है।

श्री किशोरीजी : आपके अधीन आपका सौभाग्य-सूर्य आपकी इच्छानुसार चलने के स्वभाव वाला है अस्तु आप जब जैसा कार्य करना चाहेंगी तब तैसा कैंकर्य करने के लिए वह आप श्री के सम्मुख समुपस्थित है। यह प्रतीति अपनी अकाट्य है।

श्री सिद्धिजी : (प्रेम में भरकर साश्रु) श्री लाड़िलीजू ! आप मेरी ननँद हैं और आप के कान्त मेरे ननदोई हैं। इस सम्बन्ध के अभिमान ने मुझे सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य के सिंहासन में बैठाकर युगल-मूर्तियों का अमल-कैंकर्य प्रदान किया है अतएव मैं परम परमार्थ एवं परम पुरुषार्थ प्राप्ता हो गई हूँ। आपकी अत्यधिक अभिरुचि अपनी भाभी पर और श्री राघवजू का अमल-अनुराग अपनी सरहज पर है, जानकर जीव मे जानकी-तथा जानकी-नाथ की ज्योति का अस्तित्व रह गया है, मैं और मेरा कहाँ खो गया ? मुझको पता नहीं, धन्य है आप दोनों की अहैतुकी अनुकम्पा को जिसने आप दम्पति को मुझे अपनी कहकर स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया है। जय हो, युगल किशोर के कृपा-कटा-क्षपात की, जय हो करुणा वरुणालयजू की।

श्री किशोरीजी : रसप्लुते ! कमलिनी के मधुर-मकरन्द का पान करने वाले गुण-ग्राही-भ्रमर-भ्रमरिका कमलिनी के समीप स्वयं पहुँचकर उसे स्वीकार करते हैं, यह प्रकृति का प्रकट नियम है। रसिकों को रस चाहिये अस्तु जहाँ रस है, वहीं रसिकों का निवास है, वही उनका जीवन है और वही उनका आनन्द है तदनुसार सिद्धि-सदन के सरोवर में विकसित सिद्धि-कमलिनी की सुगन्ध ने श्याम भ्रमर को गंधोन्मादित कर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। धन्य है हमारी भाभी को। अहो ! जिसके सम्बन्ध-जनित सुख से सुख-सागर को सुख की अनुभूति होती है। आश्चर्यमय उसके भाग्य-वैभव की सदा जय हो, जय हो, सदा जय हो।

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! स्वजनों को प्रशंसा के पीठ पर प्रतिष्ठित कर देना आपका सहज स्वभाव है। आप युगल-मूर्ति सर्वतन्त्र स्वतंत्र हैं, अपने भोग्य को आप अपने से बड़ा बनाकर भोगें या छोटा बनाकर किन्तु है वह आप का शेष, भोग्य और रक्ष्य आपकी अधीनता में ही उसके स्वरूप की संरक्षा संभव है। आप ही उसके शेषी, भोक्ता और संरक्षक हैं। लाड़िलीजू ! जाने दें अब इस विषय को। आप श्री के परमैकान्तिक लीला जनित सुखों के प्रकार को श्रवण करने की आतुरता कर्णों को हो रही है, अतएव यदि आप इस आर्ताधिकारिणी को श्रवण कराना समुचित समझती हों तो श्रवण करायें।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! हमारी परमैकान्तिक लीलाओं का स्फुरण तो आपके हृद्देश में स्थित कमल के अष्टदलीय-कुंजों में अष्टयाम होता ही रहता है अतएव हमारी गुह्यातिगुह्यतम रसमयी-ललित-ललित लीलायें आप से अविदित नहीं हैं। आपकी अभिरुचि के विपरीत चलने की क्षमता न होने से परस्पर सुख-स्वारस्य-संवर्धन के लिए कुछ कहूँगी ही। श्रवण करें-- सुहाग-रात्रि की शुभ-बेला थी। मैंने शैय्या-बन की बिहार-भूमि में एक चमत्कार पूर्ण दृष्टव्य दृश्य का दर्शन किया, वह यह है... एक श्यामवर्ण का सुन्दर सलोना मृग एक कनकवर्णा मनोज्ञा मृगी की माधुरी को सकृदवलोकन करते ही उसके मुखचन्द्र का चकोर बन गया और मृगी भी मृग-मुखचन्द्र की चकोरी बन गई, पुनः परस्पर चन्द्र-चकोर बनी हुई वे प्रेम की दोनों प्रतिमायें परस्पर के आकर्षण से एक-दूसरे के लिए लोह चुम्बक बन कर लिपट गयीं। अस्मिता की अँधेरी की काली मूर्ति अस्त ही नहीं अपितु मृत हो गई आनन्द के आदित्य के आलोक ने उनकी आत्मा को स्वस्वरूप में स्थित कर दिया। रस की दो धारायें एक धारा बन गई, पुनः सम्मिलित धारा ने स्व-प्रवाह के सम्प्रवेग से लोकवेद के किनारों को तोड़ दिया और तटवर्ती समस्त

वृक्ष-समूहों को उखाड़ फेका। अहो ! तटिनी के तट को तटिनी-नटिनी ने अपनी नृत्यकला के कौशल्य से कुचल कर उसे रंग-भूमि में परिवर्तित कर दिया। आश्चर्य ! आश्चर्य!! महाआश्चर्य!!! उस रंग-स्थली में उन दोनों की कई कल्प-समूहों की रंगकेलि वर्तमान समय के क्षणार्ध ही के समान प्रतीत हुई।

सर्वतन्त्र स्वतंत्र वे स्वच्छन्दचारी मृग दो मुहूर्त में चैतन्य होकर चैतन्यघन का आनन्द लेने लगे। दिव्य-काम उन दोनों दिव्य-दम्पति के चरणों में लोट-पोट हो गया और अभ्यर्चना-पूर्वक सेवा का सुअवसर प्राप्त करने की अभ्यर्थना करने लगा। दीन के दैन्य को देखकर द्रवीभूत हो जाने वाले दया-सिन्धुओं की दयापूर्ण दृष्टि ने काम की कामना पूर्ति के लिए संकेत किया। जन-सुख से सुखी होने वाले श्याम-गौर वपुष के मनसागोचर मृग-मृगी के परस्पर आलिंगनादि उपक्रम ने उपसंहार की सम्प्राप्ति करके नींद की आतुरता से दोनों को शय्या-पृष्ट पर शयन करा दिया। भाभीजी ! अरुणिम-आभा से युक्त अरुणोदय के पहले ब्रह्म-मुहूर्त में अन्य हरिणियों से प्रबोध किये जाने पर प्रबुद्ध होकर वे मृग-मृगी परस्पर पुनः पग गये और अपनी असमोर्ध्व लावण्यमयी-लीलाओं के द्वारा अपने परिकर-वृन्द को परमानन्द का अनुभव कराने लगे। दोनों की दैनन्दिनी लीला देखने के लालच से सुर और सुर-सुन्दरियों का समूह कभी अयोध्या अवनि में उतर आता और कभी घन की ओट लेकर आकाश से ही अवलोकन करता और इत्र-अरगजा, पुष्पमाल-कुंकुम केशर तथा कस्तूरी की वर्षा के साथ पंचध्वनि करके आनन्द-सिन्धु में बाढ़ ला देता अहो ! आनंद के अपार अम्भोधि में निंमग्न प्राणियों को आनन्द के अतिरिक्त अन्य के दर्शन का सदा अभाव रहता है।

श्री सिद्धिजी : रस-रूपिणी की रसवत्ता रसिक-शिरोमणि के हार्दानुभव का विशेष विषय है एवं रस-स्वरूप रसिकेश्वर राम का अलौकिक अनुभव करना रस-स्वरूपा रसिकिनी हमारी ननंद के हृदय का कार्य है किन्तु परस्पर विषय, आश्रय और रीति-विपरीत क्रिया के आधार बनकर माधुर्य-महोदधि की रस-माधुरी की इयत्ता का पता कोई नहीं लगा सकते। धन्य है हमारे भाग्य को कि ऐसी रस-मूर्तियाँ हमें अपना कहती हैं। अहा हा ! "हे भाभी" "हे श्याल-वधू" के रसीले शब्द-रस का श्राव करते हुये मेरे ननँद-ननदोई के मुख से विनिसृत होकर मेरे श्रवण-रन्ध्र में प्रवेश करते हैं तब मैं, मेरा भूल जाता है और आनन्द-विभोर बन जाती हूँ मैं। जय हो युगल-रसराज मूर्तियों की।

श्री किशोरीजी : भाभीजी! उन रस-मूर्तियों का उद्भव स्थान तो आपकी अन्तर्देशिक-भावना की भव्य-भूमि ही है। पूजक न हो तो पूज्य-मूर्ति की अप्रतिष्ठा-अनादर और अपचार ही होता है, भक्त न हो तो भगवान किस चिड़िया का नाम है कौन जाने। मैं तो कहती हूँ कि भक्त की भावना ने ही भगवान को जन्म दिया है।

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! आप जिसे, जब जैसा बनाने का संकल्प करेंगी उसके तब तैसे स्वरूप का निर्माण हो जायेगा, जिसे आप बड़प्पन प्रदान करेंगी उसे कौन शक्ति लघु बनाकर अपमान करने में समर्थ होगी। अपने जन का आदर करना एवं उसे प्रतिष्ठा की चरम-सीमा में प्रतिष्ठित कर देना आप का सहज स्वभाव है। अब आपके भैया की सायंकालिक-सेवा का समय आ गया है अतः उसमें संलग्न हो जाना आपकी भाभी के अनुरूप होगा अन्यथा मेरी अनुचित अभिव्यक्ति, आप श्री के स्वजनों के अनुरूप न होकर

आपकी अमल-कीर्ति के धवल-धाम पर कालिमा के विरुद्ध बिन्दु की भाँति कवियों द्वारा अभिव्यञ्जित होगी।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! हमें भी अम्बाजी के समीप जाना है क्योंकि वे हमारी प्रतीक्षा करती होंगी अतएव हम दोनों अपने-अपने औचित्य का आदर करें। आपकी पति-परायणता एवं पति-प्रेम की पराकाष्ठा समस्त सती-साध्वियों से प्रशंसनीय है। आप नारी-जगत में स्त्री-धर्म का प्रशिक्षण करने वाली प्राचार्या हैं। आपकी अमल-कीर्ति के योग से मेरे मुखचन्द्र में राहु का स्पर्श त्रिकाल असम्भव है।

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! आपको दृग से ओट करने की इच्छा कभी न हुई है, न है, न होगी किन्तु समय का अनुवर्तन करना ही पड़ता है। अच्छा, आप पधारें।

[दोनों परस्पर मिलकर अपने-अपने कार्य का सम्पादन करने के लिए प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

पञ्च पञ्चाशः दृश्यः ५५

[श्री सिद्धि कुँअरिजी अपनी सखियों समेत श्री रामजी के समीप बैठी हैं। अपने हाव-भाव से अपने ननदोई को परम प्रसन्न कर-करके स्वयं उनके दर्शन, स्पर्श एवं चितवनि-मुसकनि से सुखी हो रही हैं। विनोद की सुधा समाज को संसिक्त कर रही है। आनन्द-सिन्धु में मग्न सिद्धि कुँअरि तथा श्यामसुन्दर रघुनन्दन पारस्परिक चर्चा से चित्रादि सखियों के आनन्द को अतिशय बना रहे हैं।]

श्री सिद्धिजी : (मुस्कराकर) श्याम सुन्दर! श्यामा की सलोनी मूर्ति के दर्शन ने आप श्री के चित्त में अपनी सरहज का स्मरण न रहने दिया क्यों ? अहो ! आश्चर्यमय, सौन्दर्य-माधुर्य के महासागर में माधुर्य का सरोवर मिलकर अपने व अपने तटवर्ती-वृक्ष-समूहों को भूल गया तो कोई आश्चर्य नहीं। आप संकोच न करेंगे।

चित्राजीः (मुस्कराकर) स्वामिनीजू ! ननँद के फन्दे में पड़कर ननदोई को अवकाश कहाँ कि वे अपनी सारी -सरहजों की ओर मन की आँखों से भी देख लें तभी तो अकेले आने में इतने दिन असमर्थ बने रहे। जब पाश ही यहाँ आ गया तब पाश में बँधी वस्तु का आ जाना स्वाभाविक है अन्यथा अभी हम लोगों की आँखे अकुलाती ही रहतीं इन्हें अपना विषय बनाने के लिये। वास्तव में लाल साहब के ललचाये हुये लोचन हमारी लाड़िलीजू के लोचनों का लाभ प्राप्त कर जब अयोध्या भूल गये होंगे तो मिथिला को भूल जाना स्वाभाविक है।

पद : लाल फँसिगे ललीजू के फन्दे।
तिरछी तकनि मन्द मुसुकावनि, फाँसी ननँद अनन्दे।
भये विहाल हमार हिय हारे, श्री सुख के सुख कन्दे।
लखि-लखि सिया शरीर की सम्पति, अहनिशि विहर स्वच्छन्दे।

मिथिला सुधि कहुँ कैसे आवै, सरहज सुख लगि मन्दे ।
निरखत वाट मन्द भँइ अखियाँ, सुधि न लिये नृप नन्दे ।
कारे-कारे हृदय कठोरे, जानन पर-दुख द्वन्दे ।
हर्षण काह कहौंरी सजनी, पड़ि ननदोइया फन्दे ।

श्री रामजी : (चित्तापहारी चितवनि युक्त मधुर-मधुर मुस्कराते हुये) विनोद प्रिये! हमारे मन-मृग को फँसाने के लिये आप ही ने तो फन्दे को फैलाया है और फन्दे में फँसे हुये उस मृग को पकड़कर अपने अधीन कर लिया है जैसे बन मृग को जाल में फँसाकर, फँसाने वाला बधिक कहे कि ए मृग ! तुम फन्दे में फँसकर हमें भूल गये हो क्या ? ठीक वैसा ही कहना आप लोगों का है किन्तु वास्तव में फन्दा और फँसाने वाला, उस मृग को अत्यन्त मधुर और प्रिय क्यों लग रहा है। अहा ! दोनों में उस मृग की आसक्ति को देखकर आश्चर्य होता है कि वह दोनों से अलग होने में दुख का अनुभव करता है।

श्री सिद्धिजी : रघुनन्दन ! वास्तव में आप प्रेम की प्रतिमा हैं अतएव प्रेम-पाश भी प्रेम-प्रतिमा का ही प्रतिरूप है। आप ही फन्दा है, आपही फँसने और फँसाने वाले हैं। अपनी व्यक्ताव्यक्त लीलाओं को आप श्री ही समझने वाले हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी जब आपके राहस्यिक-मर्म को नहीं जानते तो इतर प्राणियों के मन का वहाँ न पहुँचना स्वाभाविक है। हम तो इतना ही जानती हैं कि आप सुर-नर-मुनियों से वन्दित ब्रह्म-ईश्वर या जो कुछ भी हैं, बने रहें, किन्तु हमारे तो ननदोई हैं। हमें बहुत प्यारे और अच्छे लगते हैं। नयनाभिराम ! हम आपका वियोग सहने में सक्षम नहीं हैं, इसलिये मन्द-मन्द मुसुकराती हुई आपकी मन-मोहिनी मधुरातिमधुर मंजु-मूर्ति के अदर्शन का योग हमें न चाहिये। आपने अपनी चातुर्य कला से समझा-बुझाकर मिथिला में रहने के लिये हमें राजी कर लिया और स्वयं अयोध्या में जाकर अवनि-कुमारी के आनन का अवलोकन करते ही अन्य सबका ज्ञान विसर्जन कर दिया । (रामजी का हाथ पकड़कर व चिबुक स्पर्श कर) क्यों बात सही है न ? "हम शीघ्र आकर अपने दर्शन का दान देगें" यह उदारता भरी वार्ता का विस्मरण करना ही आपका अभीष्ट था क्यों ? दूसरे की दुर्दशा को श्रवण करके भी सर्व-संरक्षक को मौनी बाबा बनकर महलों की महिलाओं से मन को अलग नहीं करना चाहिये क्या ?

श्रीरामजी : हे हृदय-हर्षिणी ! आप अपनी आँखों के तारे का समग्र ज्ञान बुद्धि के दर्पण में देखकर भली-भाँति जानती हैं अतएव जानते हुये भी अपने सर्वाङ्गीण सौन्दर्य-संयुक्त मन-मोहक दृग-तारों को व्यर्थ में कोसना या उन्हें उलाहना देना आपके अनुरूप नहीं है। अरे ! देखने में वह काला है किन्तु प्रकाश का पुंज है! शील का सागर एवं दया का सिन्धु है, उसने अपने सम्मुख आने वाले-प्राणियों को अपना सर्वस्व लुटा दिया है। फिर आप जैसी अपनी आत्म-प्रिया को भुलाने में वह कैसे सक्षम हो सकता है। श्रीधरात्मजे ! मेरा मन सदा आपके पास रहता था इसलिये मनीषियों के मतानुसार मेरी आत्मा वहीं रहती थी जहाँ मेरा मन ! गुरुजनों के अनुशासन की अप्राप्ति ने आपके संयोग से मुझे वंचित रखा, चाहते हुये भी आप श्री के मुखमयंक का दर्शन न कर सका। (श्रीरामजी, सिद्धिजी का हाथ पकड़कर स्नेह से) कहिये अब मुझे कोसेंगी तो नहीं ? यदि असत्य वार्ता में सत्य का आरोपण कर ऐसा ही मान लिया जाय कि मैं आपको भूल गया था किन्तु भूला तो

आपकी ही वस्तु विशेष को देखकर। अस्तु त्वदीयानुराग आपके अनुराग को बढ़ाने वाला एवं आपको न भूलना सिद्ध करता है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! क्या आप मेरी अन्तर्वार्ताओं एवं मनोभावों को नही जानते ? जानते हैं तो भला बतलायें, कभी मेरे मन ने आपको कोसा है ? अपने आश्रितों की अटपटी-बातों का अर्थ एवं उनके मुखनिस्सरित होने का कारण आपसे अविदित नहीं है। आप अन्तर्यामी हैं, अतएव आप श्री का अपने जन के अन्तर्भाव के अनुगत चलने का स्वभाव है। किंकरी क्या करें ? हृषीकेश की प्रेरणा-अनुसार तो वह वाणी का विसर्ग कर सकती है या यों कहिये अल्पज्ञ-जीव अपनी बुद्धि के अनुसार ही सर्वज्ञ सर्व-समर्थ-प्रभु से प्रार्थना एवं याचना करेगा। अस्तु हास-विलास भरी मेरी विरहिणी की व्यङ्गोक्ति पर ध्यान न देकर क्षमा करेंगे।

श्री रामजी : प्रिये ! आपकी प्यार भरी हास्य-रस की समस्त वार्ताओं के अप्रतिम-आस्वादानुभव ने मुझे आपकी बातें सुनने का आसक्त बना दिया है। जी चाहता है, कि वाण्यामृतवर्षिणी जी अपनी वाक्-सुधा का घोल मेरे कर्णो में अनवरत उड़ेलती ही रहें। आप मुझे स्वप्न में भी नही कोसती हैं, उल्टे मेरे वियोग जनित क्लेश का सम्मान करती हुई समय का सदुपयोग किया करती हैं। इसके विपरीत मैं आपको विरह-वाह्नि में झुलसते जानकर भी शीघ्र सिद्धि-सदन का अतिथि न बन सका। हाय ! हमारे हृदय कमल की कली को हमारी अनुपस्थिति में असंयोग की अग्नि ने हरी-भरी न रहने दिया। हाय ! मैं कितना कठोर हूँ। (श्रीराम जी शिथिल हो जाते हैं।)

श्री सिद्धिजी : प्रियतम की स्मृति ही अमृत है अस्तु इस अनूठी सुधा का संस्पर्श जिसके मानस-पटल पर सदा अंकित रहता है, उस कमल-कली का कोष सदा हरा-भरा ही रहता है। प्यारे ! समझाने से भी न समझने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ अपना आहार न पाकर दुर्बल और दुखी बनी रहें, तो इसमें मेरा क्या दोष है। अब इनके आहार की व्यवस्था करके आपने इन्हें भी सुखी कर दिया है। जय हो आरत-हरण शरण सुखदायक के सुन्दर स्वभाव की।

श्री रामजी : प्रिये ! आपकी प्रेम-चर्चा आपके प्रेमास्पद को नेह-निकुंज में प्रवेश करने की कुंजी के समान प्रतीत होती है। क्या कहूँ ? विदेह-वधू के नाम रूप-लीला-धाम की स्मृति से आपका राम स्मृतिहीन हो जाता है फिर भी उसको उक्त चतुष्टय में रमना ही रसमय तथा रुचिकर मालुम पड़ता है, प्रमाण में आपकी आत्मा स्वयं साक्षी है।

श्री सिद्धिजी : श्यामसुन्दर ! आपकी अहैतुकी-कृपा से ही आपके सुन्दर स्वभाव एवं हार्द-स्नेह का ज्ञान मेरी आत्मा में प्रकाशित होता है, अन्यथा हाथ के माप से अनन्त आकाश को नहीं मापा जा सकता। आप अपने पद-पंकज पराग की भ्रमरी-किंकरी का स्नेह अत्यधिक मात्रा में करते हैं, यह आपके उदारपूर्ण हृदय की हार्दता है। स्वजनों को सम्मान के सिंहासन में बिठाकर अपना सम्पूर्ण प्यार प्रदान करना आगन्तुक नहीं, अपितु आपके स्वभाव से आया है। जय हो जन-मन रंजन, रघुनन्दन की, जय हो जन-मन-मानस विहारी जगवन्दन की।

श्री रामजी : प्राण-प्रिये ! अपनी आत्मा के प्रति अनुराग करना अखिलेश्वर को भी मान्य है, अतएव आत्म-रूपिणी आपके प्रति अनुरक्ति होना आपके ननदोई के स्वरूपानुरूप है। अयोध्या का वैभव एवं तज्जनित सुख का साम्राज्य आपके संयोग-सुख

के सामने नगण्य समझता हूँ मैं, इसी प्रकार आपके वियोगोद्भूत शोक–सिन्धु के सामने संसार के सारे शोक सम्मिलित होकर बिन्दु की भी समता नहीं कर सकते। अहा ! जो आह्लाद अयोध्या में अप्राप्त था, आज वह आनन्द मेरे रोम–रोम में भर गया है और फूट–फूट कर नेत्रवन्तों के नेत्र का विषय बन रहा है। आनन्द ! आनन्द! आनन्द!

श्री सिद्धिजी : प्रियतम ! मेरे ननद–ननदोई एकान्त में बैठकर अपनी किंकरी की चर्चा करके अपने परमैकान्तिक सुख का भी विसर्जन कर देते हैं। अहो ! यह जानकर तथा उनकी असीम–अनुकम्पा का अनुमान अपनी आत्मा में कर–करके मेरा मन कृतज्ञता से परिपूर्ण हो जाता है किन्तु कृतघ्ना की तरह कुछ भी नहीं कर पाती अतएव उदार–शिरोमणि युगल–मूर्ति अपनी कृपा एवं भलाई से मेरा हित और प्रिय करते हुये अपनी किंकरी के एक प्रणाम मात्र से दासी पर इसी प्रकार रीझे रहें। जय हो स्वजन–सनेही करुणा–वरुणालयजू की।

श्रीरामजी : रूप–रसिके ! हमारे शरीर एवं आत्मा के गुणों की उपादेयता स्वजनों को सुख पहुँचाने में ही है। यह दोनों प्रकार के गुण अपने लिये नहीं अपितु आपके लिये हैं। आप इनसे आनन्द का अर्जन कर रही हैं, यह जानकर मैं सुख–सिन्धु में समाविष्ट हो गया और विचार करने लगा कि मेरे शारीरिक और आध्यात्मक–सम्पत्तियों से सिद्धि कुँअरिजी को यदि सुख संप्राप्त हो रहा है तो मुझ ऋणिया के द्वारा उनका ब्याज तो अदा होता रहेगा अन्यथा ब्याज की अप्राप्ति में धनिक के समक्ष ऋणी को सर्वदा सिर नीचा ही किये रहना पड़ता है जिससे दोनों को असंतोष का ही परिशीलन करना पड़ता है।

श्री सिद्धिजी : रसिक–शिरोमणि ! आप श्री ही वेद–वर्णित रस हैं, आप ही प्राणियों के प्राण तथा चेतन के चेतन हैं। आप ही प्रेमिक, प्रेमास्पद और प्रेम हैं, त्रिपुटियों के भंग होने पर, एक आप ही की सत्ता शेष रहती है अस्तु, आप मेरे सर्वस्व हैं। आपको प्राप्त कर मुझे कोई प्राप्तव्य शेष नहीं है, आप ही मेरे मूलधन हैं। अहा आनन्द ! महा आनन्द !! मूल का मूल बना है और उससे अद्भूत परमानन्द मेरी आत्मा का आहार बना हुआ स्वस्वरूप को सुख–सिन्धु में समाविष्ट किये रहता है, जैसे स्वर्णालंकारों से अलंकृत प्राणी के पास उसका मूलधन, स्वरूप स्वर्ण सर्वभावेन है ही ऊपर से अलंकार उसकी शोभा वृद्धिगत करके उसे प्रतिष्ठा एवं आनन्द भी प्रदान करते हैं। "आम के आम और गुठलियों के दाम" वाली कहावत आपको प्राप्तकर पूर्ण रूपेण चरितार्थ होती है।

श्री रामजी : कुँअर–बल्लभे ! आपकी आनन्दमयी मुखाकृति मुझे अपने दर्शन से अहर्निशि परमाह्लाद प्रदान करती रहती है जिसमें चितवनि, मुसकनि और बोलनि की मधुरिमा का सुधा–घोल सदा श्रवता रहता है। अब तो आपकी नित्य नवीन–नवीन लीलाओं के अवलोकन से तल्लीन होता हुआ सान्द्रानन्द को प्राप्त कर चरम तृप्ति का अनुभव करता रहूँगा। अहो! सिद्धि नाम कितना सुन्दर है जिसके बिना आपके श्यामसुन्दर भी असिद्ध हैं। लगता है कि यह प्यारा नाम मेरी रसना में रस वर्षाता हुआ सर्वदा नृत्य करता रहे। अहा हा ! सिद्धि–सदन ने अपनी सरसता से अपने में प्रकृति के आकार और मोक्ष के प्रान्त को भी आत्मसात कर लिया है, तभी तो सबको रमाने वाला राम उसमें रम रहा है। धन्य है हमारी सरहज की सहजता को जिसमें अभिमान का कणांश तक नहीं। हाँ, एक वार्ता मुझे अवश्य कहनी है, वह यह है कि कभी–कभी मुझे ऐश्वर्य परक नामों से सम्बोधित कर मेरे ऐश्वर्य का वर्णन करने लगती है तो मुझे माधुर्य–सुख का सागर शुष्क–सा प्रतीत होने लगता है। मैं

तो आपका ननदोई हूँ ननदोई! आप मेरी सरहज है सरहज ! अस्तु, तदनुसार हास-विलास-व्यङ्गोक्ति-बिहार और मीठी-मीठी गाली के द्वारा माधुर्य-महोदधि को वृद्धिंगत करने के लिये रसपूर्ण पूर्णिमा का चन्द्र आप श्री बनी रहें।

श्री सिद्धिजी : भक्त-भावन ! आप भक्त-हितकारी हैं अतएव अपने आश्रित भक्त का परिशोधन करने के लिये सदा उसका स्मरण करते रहते हैं। माता अपने शिशु के नाम, रूप, लीला और निवास स्थान के प्रति सहज ही प्रेम रखती है, यही तो उसका उदात्त मातृत्व है अन्यथा मातृ-हृदय की हार्दता के बिना नन्हा मुन्ना-शिशु काल का कवल बन जाय। प्रियतम और प्यारी के प्रसन्न करने के लिये किंकरी अवश्यमेव आपकी की हुई लीलाओं का अनुकरण एवं स्वसम्बन्धानुसार हास-विलास की आयोजित योजनाओं को आप श्री के सम्मुख प्रस्तुत करेगी और समय-समय पर वासन्तिक, वैवाहिक इत्यादि उत्सवों के आयोजन से आप श्री को सुखी बनाकर स्वयं सुखी होगी। प्यारे ! माधुर्य की माधुरी में वार्धक्य लाने के लिए ही कभी-कभी ऐश्वर्य की चटनी चाट लिया करती हूँ अन्यथा आपके रूप-रसिकों की आँखों से ऐश्वर्य ओझल ही बना रहता है क्योंकि आपके रूप के सूर्य की प्रचण्ड-किरणें उसे मृत प्राय बना देती हैं।

श्रीरामजी : रस-विग्रहे ! लीलाओं एवं उत्सवों का आनन्द समय आने पर तो सुलभ होगा ही किन्तु अभी आप अपनी संगीत-सुधा का पेय पिलाकर अपने ननदोई की चिर-तृषा को शान्त करने के लिये समुद्यत हो जातीं तो बहुत अच्छा होता। क्या मेरी इच्छा की पूर्ति सम्प्रति आप श्री के अनुकूल है ?

श्री सिद्धिजी : मनमोहन ! आपकी इच्छा ही तो सृष्टि-सृजन है। सत्य-संकल्प का संकल्प कभी अन्यथा नहीं हो सकता। आप श्री अपनी श्याल-वधू के मुख से संगीत श्रवण करके अत्यानन्द की अनुभूति करना चाहते हैं ? अहा हा ! किंकरी के सौभाग्य का सितारा चमक गया, उसे स्वरूपानुरूप श्रीराम के रिझाने का कैंकर्य मिल गया। वह धन्य हो गई। चित्रा ! विविध-वाद्यों को लेकर सब सहेलियों को श्यामसुन्दर की सेवा में शीघ्र समुपस्थित हो जाना चाहिये और प्रेम-विभोर कृतज्ञता प्रकट करते हुए रघुनन्दन की बार-बार बलैया लेनी चाहिए।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! अभी-अभी विपुल-वाद्य, प्रमोद-बन-बिहारीजू के समक्ष आ रहे हैं।

[चित्राजी अन्य सखियों से सभी वाद्यों को मगा लेती हैं।]

श्री सिद्धिजी : चित्रा ! मैं वीणा लेकर प्यारे को संगीत सुनाती हूँ और आप लोगों में से कोई वेणु, कोई मृदंग, कोई मंजीरा, कोई तरंगादि वाद्यों को लेकर मधुर-मधुर बजाना प्रारम्भ करें। नृत्य करने में कुशल सखियाँ अपनी नृत्य कला से कलाधर के मुख-कमल को विकसित करें।

चित्राजी : अपनी स्वामिनीजू के आदेशानुसार सम्पूर्ण सहेलियाँ सेवा में तैयार हैं, आप श्री अपने संगीत की सुधा-लहरी से लाल साहब का अभिषेक करें।

श्री सिद्धिजी : मेरे प्रियतम ! आप अपनी किंकरी की वाणी में बैठकर जैसा बुलवायेंगे वैसा ही तो दासी के मुख से शब्द-संचार होगा। अब अपने द्वारा गाई हुई वाणी को अपने कानों से श्रवण कर अपनी आत्मा में आनन्द की अनुभूति करें, यही कामना है।

श्री रामजी : संगीत–पण्डिते ! राम के श्रवण कब से आतुर हो रहे हैं, संगीत–सुधा का पान करने के लिये। देखिये कब से मेरे नेत्र इसी प्रतीक्षा में आपके चन्द्रानन के चकोर बने हुये हैं।

[श्री सिद्धि कुँअरिजी वीणा के तारों पर अँगुलियाँ फेरती हुई आलाप लेकर संगीत सुधा की वर्षा करने लगी। श्री रघुनन्दन का हृदय–सरोवर पूर्णता को प्राप्त कर उछलने लगा। वाद्यों की मधुर–मधुर ध्वनि अपने झंकार से भवन को झंकरित करने लगी। नृत्य–सौरभ, नेत्र–नासिका को सुखद–सुगंध से सुख पहुँचाने लगा। द्रष्टा–दर्शन और दृश्य की त्रिपुटिका भंग होने लगी।]

पद : श्याम सुंदर रस राते, हमारे सदन में शयन करें।

सिया सलोनी संग में सोहैं, मन–मोहन के मन को मोहैं
मधुर–मधुर मुसुकाते, हमारे हृदय में वास करें।
तिरछी तकनि दृगन की मारी, खाँय प्रिया की पिय रिझवारी,
चितवनि चित्त चुराते, हमारे भवन में भाव भरे।
कंकण–किंकिणि नूपुर की धुनि, औचक अवध–बिहारी सुनि–सुनि,
भूलै भान भुलाते, हमारे देह का दोष दरै।
चन्दन चर्चित चन्द्र वदनि को, दर्शन–पर्शन प्यार लहनि को,
पाये रहें ललचाते, हमारे हृदय का हरण करैं।
युगल किशोर की युगली लीला, युगल–विनोद युगल सुखशीला,
नित–नित हो हर्षाते, हमारे चित्त को चोरि हरैं।
रसिया–रिसिकिनि रस में रसिके, पगे परस्पर प्रेम में फँसि के,
रस ही रस वर्षाते, हमारे हृदय में रसहिं भरैं।
सेवै सिद्धि कुँअरि रस लीनी, लखि–लखि झाँकी नित्य नवीनी,
तत्सुख में सुख पाते, हमारे हृदय ते प्रेम झरै।
ऐसे दर्शन दिन अरु रैना, पावहिं प्यासे हमरे नैना,
हर्षण हिय पुलकाते, हमारे स्वत्व को राम वरैं।

वार्तिक : प्यारे ! यही ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान है, हृदय की यही पुकार है, चित्त का यही चिन्तन है, मन का यही मनन है, बुद्धि का विमर्श पूर्ण यही दृढ़–निश्चय है और आत्मा की स्वरूपानुरूप यही आशा और आकांक्षा है। चाह की पूर्णता चतुर–चूड़ामणि की अहैतुकी अनुकम्पा पर ही निर्भर है। अपनी श्याल–वधू की आंतरिक आशा–वेलि को हमारे ननदोई अपनी कृपा के अमृतोपम जल से सिंचन कर–करके कभी कुम्हलाने न देंगे ऐसा अपना अटल विश्वास है।

श्रीरामजी : (प्रेम में परिप्लुत साश्रु) आपके घनीभूत भव्य–भावों के अनुसार चलना ही राम की रहस्यात्मक–लीला है। अहो ! मेरी लीला का हेतु कहते समय सुर–नर–मुनियों का समुदाय भी इदमित्थं कहने में हिचकता है क्योंकि उसके बुद्धि–वैभव से परे की भाव–जन्य एवं भावमयी मेरी अतर्क्य लीला है। नट की नर्तन क्रिया जैसे ताल के अनुसार होती है, वैसी ही भावुकों के भावनानुसार मेरी भावनास्पद लीला का विकास होता है जो

भावना के पुट से सर्वथा परिशोधित रहता है अतएव आपकी अनर्घ आवश्यकता ही राम की रसमयी–लीलाओं के आविष्कार की जननी है। आपका मधुर मनोरथ ही मेरा मनोरथ है।

चित्रा जी : श्याम सुन्दर! संकोच के सिन्धु में समाविष्ट हो रही हूँ मैं तो भी मन की उत्सुकता आप से प्रार्थना की प्रेरणा दे रही है। कहिये तो विनय करूँ।

श्रीरामजी : मधुर–भाषिणि ! संकोच किसका? अपनी आत्मा से छुपाना कैसे? आप! निःसंकोच कहें। क्या कहना चाहती हैं?

चित्रा जी : प्यारे ! आपकी समस्त सारी–सरहजों के श्रवण आतुर हो रहे हैं कि आप श्री के मुख–चन्द्र विनिस्सृित संगीत–सुधा का पान करें, यदि कृपा हो जाय तो हम सब बालाओं के कर्ण कृतार्थ हो जाय।

श्रीरामजी : चित्राजी ! अपने प्रिय का प्रिय करने की मेरी बानि है अस्तु आप मुझसे संगीत श्रवण करें। कुँअर–कान्ते ! अपनी वीणा हमारे हाथ में दें।

[श्रीरामजी ने वीणा के तारों में अपनी कुसुम–कोमल–करांगुलियाँ फिराकर सरस्वती के मद को मर्दन करते हुये, उसकी झंकार से सिद्धि–सदन को झंकरित कर दिया। संगीत–सुधा का सागर उमड़–घुमड़कर समीप वर्ती सिद्धि–समाज को अपनी लोनी–लोनी लहरों के थपेड़े मार–मारकर अपने में आत्मसात करने लगा।]

पद : सलोनी सिद्धि कुँआरी मोरी जानो जिया की जीय, सहेली सुन लो
सरहज श्रीधर राजकुमारी, श्याला लक्ष्मीनिधि हिय हारी, वसते हमरे
हीय।। सहेली.....
मुसुकि–मुसुकि मधुरे मन मोहैं, चितवनि चित्तचुरावत सोहैं, बोल सुधा
सरसीय ।। सहेली .....
कोटि–कोटि रति काम लजावत, शोभा शत शशि की दरसावत, मुख मधुरो
लवनीय ।। सहेली......
चरित–चन्द्रिका अमृत वर्षत, भरत हृदय मम तद्यपि तरसत, अपने वश
मोहिं कीय ।। सहेली....
मम उर अजिर बिहार करैं दोउ, प्रेम–परख करि सकै नहीं कोउ, शाश्वत
रस को पीय ।। सहेली.....
सहौं न क्षणमपि तासु वियोगा, सदा सदा सरसै संयोगा, यथा दुग्ध में
घीय ।। सहेली सुनलो।।
मिथिला–अवध एक कर मानी, कंचन बन प्रमोद इक जानी, एकहिं चारहु
जीय ।। सहेली....
हर्षण हर्षित रसहिं मझारी, रहहिं रसे निशिवासर चारी, चारहु बने
अमीय ।। सहेली...

[संगीत श्रवण करते–करते सिद्धिजी सखियों सहित प्रेम–मूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं। श्रीरामजी प्रकृतिस्थ करने की इच्छा से वंशी बजाकर उसके अमृतमय बोल के घोल को सबके श्रवणों में उड़ेलकर सबको शीघ्र सचेत कर देते हैं।]

श्रीसिद्धिजी : रस–राज! आप श्री के सुमुख–शीतांशु से विनिस्सृत संगीत–सुधा के पद–पद में परमानन्द परिपूर्ण है। अहो ! मुख–मयंक की मधुर–मधुर मन्दस्मिति की मनोहारिता गाते समय में भी अपना संमोहन कार्य करने से विरत नहीं होती। आश्चर्य! अपने ननदोई के आनन में गाते समय संकोच एवं विस्तार की एक रेखा का भी दर्शन नहीं होता प्रत्युत सौन्दर्य में और और आधिक्य एवं नव नव निर्मल निखार होता जाता है। कर–कंज की अंगुली रूपी पंखुड़ियाँ जब वीणा के तारों पर नृत्य करने लगती हैं तब स्वर ब्रह्म अपनी सर्व शक्तियों समेत साकार होकर सीताकान्त की सेवा में समुपस्थित हो जाता है। यह प्रत्यक्ष प्रतीति होने लगती है कि संगीत कला की जननी जानकी जीवन की जिह्वा हैं। बोल क्या ! अमृत का घोल है ! अहा ! संगीत–सुधा का पेय पिलाते समय प्रियतम का प्यारा–प्यारा सर्व शरीर प्रेम से परिप्लुत हो जाता है। और उसमें अनंतानन्त सौन्दर्य–माधुर्य–सौकुमार्य–सौष्ठव–लावण्य, लालित्व, मोहकत्व और वशीकरणत्वादि शरीर सम्पत्तियों का संदर्शन होने लगता है। अहा हा! मैं तो धन्य हो गई, भाग्य भाजना बन गई परमानन्द पा गई। आनन्द ! आनन्द! आनन्द!

[कहकर सिद्धिजी प्रेम–विभोर हो जाती हैं।]

श्रीरामजी : (उपचार द्वारा सचेत करके) प्रेम–पण्डिते! आपका प्रेम पाकर मैं क्या नहीं पा गया। मैं पूर्ण हो गया । आपको अपनी बनाकर सुख–सिन्धु में समा गया। चारुनेत्रे ! अब सायं–कालिक कृत्य करने का समय है इसलिये उसके निर्वाह में लग जाना चाहिये। कहिये ठीक है न ?

श्रीसिद्धिजी : आर्य–श्रेष्ठ! आप श्री आर्य–परम्परा के निर्वाह में सदा निरालस हैं। आर्य–पुरुषों के आचरण ही इतर पुरुषों को सदाचरण में सदा सदा से लगाते आये हैं अस्तु आप श्री अविलम्ब नित्य–कर्मों का अनुष्ठान करने में लग जांय। मैं भी आपके कैंकर्य के अवरोधी कार्य करने में संलग्न होऊँगी।

[श्री रामजी व ससमाज श्री सिद्धिजी प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

षट पञ्चाशः दृश्य ५६

[दिन की प्रथम प्रहर की बेला में नित्य–कर्म से अवकाश पाकर सानुज श्रीरामजी सिद्धि–सदन में सारी–सरहजों से सप्रेम सेवित हो रहे हैं। अपने–अपनी सेवा में तत्पर सिद्धिजी तथा उनकी सहेलियाँ अपने ननदोई के मुखोल्लास को विवर्धन कर रही हैं। वसंतोत्सव का उल्लास उभय–पक्ष में उमंग ला रहा तत् विषयक–वार्ता हृदय में हर्ष का संचार कर रही है।]

श्री सिद्धिजी : रंगेश्वर ! आज रंगोत्सव की रंग–वाहिनी सरिता में रंग–बिहारी, बिहार करेंगे न। घबड़ायें नहीं रंग–बिहारिणीजू भी आपकी रंगकेलि में सम्मिलित रहेंगी क्योंकि उनके बिना रंग–केलि में रंग नहीं आयेगा आपको।

श्री रामजी : (मुस्कराकर) रंग–प्रिये! क्यों नहीं, जब रंग–बिहारी नाम से आपने मुझे घोषित ही कर दिया तब रंग–केलि का आस्वादन आपका रंगेश्वर अवश्य करेगा। हाँ, यह बात सत्य है कि यह केलि आपके रंग–महल में आप के रंग में रँगकर ही होगी।

श्री सिद्धिजी : (विनोद में) श्याम सुन्दर! रंग–केलि के तो अब आप पंडित हो गये होंगे, क्यों ? रंग–केलि की सम्पूर्ण–कलायें अपने आप आपको वरण करली होंगी, बात ठीक है न ?

श्रीरामजी : चारु–स्मिते ! चित्रा की चौकीदारी में नियुक्ति थी जब, तब आपके आचार्यत्व में मैंने परमैकान्तिक–केलि की दक्षता प्राप्त कर ली थी न ? क्यों स्मरण नहीं है ?

श्री सिद्धिजी : (मुस्करा कर) प्यारे ललन की लोनी लोनी लीलाओं की स्मृति ही तो जीवन की ज्योति है। मैंने तो कोहवर–कुंज में केलि का केवल श्री गणेश कराया था। रंगीले को रंगीली की रंगस्थली में रंग–केलि का कौशल्य पूर्ण ज्ञान हो गया होगा अब मुझे पूर्ण प्रतीति है।

श्री रामजी : (मंदस्मिति, नेत्र चलाकर) केलि–कोविदे ! शेष केलि–कला का ज्ञान श्रीधर–कुमारी जी अपनी मनोरम पाठशाला में करा देंगी। क्यों?

श्री सिद्धिजी : (तिरछी तकनि से मुसकराती हुई) रसज्ञ उच्चातिउच्च निरतिशय पाठशाला में पढ़कर निम्न–श्रेणी की पाठशाला प्यारे को सुखद न होगी।

श्री रामजी : रसप्लुते ! रंग–केलि का आमंत्रण देकर अतृप्त लौटाने की लीला न करें। मुझे तो आपकी पाठशाला में ही पूर्णता का पाठ लेना है। मेरे मन में निम्नता का अनुसंधान स्वप्न में भी नहीं है। निम्न बताकर आपका एक बहाना करना मात्र है, चलिये, चलिये आपकी रंगस्थली की अनुभूति करें।

श्री सिद्धिजी : रसिकवर ! आपको विनोद के विपिन में बिहार करना बहुत अच्छा लगता है इसलिये आज आपको विनोद ही विनोद सूझ रहा है क्यों ?

श्री रामजी : वाह वा ! विनोद–बन–बिहारिणीजू को विनोद से विरति हो गई है, इसलिये विनोद की बातें कहना–सुनना नहीं चाहती क्यों ? वैराग्यवतीजी की जय हो, जय हो।

[सिद्धिजी मुसकराती हुई संकोच से निम्न–नयना हो जाती हैं।]

चित्राजी : रस–लम्पट को आज रस की बहुत प्यास है इसलिये रस ही रस की बातें कर रहे हैं। कहाँ रंगोत्सव का समय और कहाँ इनकी रंगीली–रसीली बातें।

श्रीरामजी : रंगोत्सव के समय रंगमयी वार्ताओं का निषेध है क्या रंगशास्त्र में। पंडितानीजी बतलाने की कृपा करें।

चित्राजी : (लज्जित होकर मंद मुसकान से) रंग–शास्त्र के जब रंगीले पंडित जी ही यहाँ पधारे हैं तब पंडितानीजी क्या कहें?

श्री रामजी : पंडितानीजी के मुख–मकरन्द में मुग्ध पंडितजी की पंडिताई हवा हो गई, चित्राजी।

चित्राजी : चतुर–चूड़ामणि ! पंडितजी की पंडिताई पंडितजी का साथ कभी नहीं छोड़ती क्योंकि बात करने का चारुतम–चातुर्य पंडित श्यामसुन्दर जी के समान व अतिशय कहीं किसी पुरुष में नहीं पाया जाता।

श्री रामजी : (चित्राजी का हाथ पकड़कर) पंडित श्याम सुन्दर में पांडित्य का प्रदर्शन गौर–सुन्दरी पण्डिता के प्रताप से है, चित्राजी।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! तभी तो मैं कह रही थी कि चार्वाङ्गी कनकोज्वला चम्पकवर्णा गौर–सुन्दरी के रंग–स्थली में रहकर आप श्री रंग–केलि के विशद विद्वान हो गये होंगे। (श्री रामजी कुछ संकुचित से हो जाते हैं।)

चित्राजी : स्वामिनीजू! सीताकान्त को संकोच ने वरण कर लिया था, इसलिये वे साफ–साफ न बोलकर दबी–दाढ़ कुछ–कुछ कर रहे थे। अब आपके समक्ष विवश होकर उन्होंने अपनी सत्य–वादिता का समीचीन प्रमाण लज्जा का परित्याग करके रख दिया है। आप श्री को यह जान लेना चाहिये कि रंगेश्वर, रंगेश्वरी के रंगस्थली में रात–दिन रहकर रंग–केलि के स्नातक हो गये हैं।

श्री सिद्धिजी : चित्रा ! तुम क्या कह रही हो ? श्याम सुन्दर ने लज्जा का आचमन किया तो अपने श्वसुर पुर में कि अन्यत्र ? सिद्धि सदन में रंगेश्वर रघुनन्दन का निरावरण दर्शन रंगेश्वरी को सपरिकर हो जाय तो कोई विशेष लज्जा या आपत्ति का विषय नहीं है।

श्री रामजी : आप दोनों की विनीत किन्तु व्यंग–वचनावली हमें छकाने में प्रयत्नशील है क्यों ? यह हमें अविदित नहीं, हम सोच रहे हैं कि यदि हम भी इन्हें छकाने में लग जायेंगे तो ये छककर वर्तमान वंसतोत्सव को विस्मृति की खाई में न ढकेल दें।

चित्राजी : प्यारे ! अवध–कुमारियों के छकाने में अवध–छैल की कला काम कर जाती थी किन्तु यहाँ मैथिल–सीमन्तिनियों के सामने कलाधर की कला पंगु हो जायेगी पंगु।

श्री रामजी : अच्छा चित्राजी ! सम्हल जाइये, छकने से अपने को बचाइये।

चित्राजी : प्यारे ! मैं सम्हली हुई हूँ, आप अपने अस्त्र–शस्त्र प्रहार करें।

[श्रीरामजी इच्छा–मात्र से अपनी अनोखी चितवनि व मुसकनि से चित्राजी के चित्त में संमोह उत्पन्न कर देते हैं, चित्राजी श्री सिद्धिजी की ओर देखकर उन्हें श्री किशोरीजी समझकर बातें करने लगीं।]

चित्राजी : श्री मिथिलेश– कुँअर की अनुजे सीते ! आप श्री अपने कोटि–काम कमनीय कान्त के समक्ष तो बैठी हैं और वार्तालाप कर रही हैं किन्तु हमें तो श्याम–घन के हृदय से लिपटी हुई विद्युत वर्णा आपकी झाँकी झाँकने की इच्छा हो रही है। उठिये, उठिये ।

[श्री सिद्धिजी का हाथ पकड़कर उन्हें श्रीरामजी के वामांङ्क में बिठाने का प्रयत्न करती हैं। श्रीसिद्धिजी संकुचित होकर बलपूर्वक यथा स्थान बैठे रहने का प्रयास करती हैं। सानुज श्रीराम जी ताली बजा–बजाकर हंसने लगते हैं। प्रभु–इच्छा से चित्राजी प्रकृतिस्थ होती हैं।]

श्री रामजी : (मुस्कराकर) क्यों चित्राजी ? यह श्री मिथिलेश–कुमारजी की अनुजा हैं। उफ! हमें क्या पता, हम नहीं समझते थे कि निमिकुल–नन्दन का विवाह बहन के साथ हुआ है। आज मालुम हुआ कि निमिकुल में यह भी संभव है।

श्री सिद्धिजी : चित्रा ! चौर्य–चूड़ामणि के द्वारा तुम्हारा चित्त अपहृत कर लिया गया क्यों ? चित्त चोरी हो जाने पर ही तुमने आज हमारी हँसी कराकर रघुवंशी सरदार की शान को समुन्नत–शील बनाया है। हाय ! अब तो सहज विनोदी स्वभाव वाले श्याम सुन्दर सभी सारी–सरहजों की हंसी उड़ा–उड़ाकर विलज्जित करेंगे। हाय आज तुम मन मोहन की एक मुस्क्यान में ही मोहित होकर मन, चित और बुद्धि को खो बैठी ।

[कहकर श्री सिद्धिजी मंद मुस्कान युक्त श्री रामजी की ओर दृष्टि निक्षेप करती हैं।]

चित्राजी : (लज्जित होकर) श्याम सुन्दर ! आपका संकल्प क्या से क्या नहीं करा सकता। बलिहारी मधुर मुसकान की। चितवनि द्वारा चित्त की चोरी करके कुछ का कुछ कहवा लेना कौन वीरता है? यह तो छल है, कपट है, जादूगरों का जादू है। डीठ-टोना मारने वाले साधारण व्यक्ति भी बड़े-बड़े विचार शीलों की बुद्धि में वैषम्य उपस्थित कर देते हैं। हम तो चित्रा हैं न, आपकी एक चितवनि से चित्र बन गई तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? चलिये, आज आपकी विजय हुई प्यारे ! सच पूँछिये तो आपकी विजय श्री ही तो हमारी विजय है। आप श्री के मलीन मुख की अप्रेक्षिता चित्रा की चर्या से वैदेही-बल्लभ का मुखाम्भोज विकसित हो गया। अहा ! कितने आनन्द का विषय है, मैं धन्य हो गई, कृतकृत्य हो गई और किंकरी का जीवन सफल हो गया।

श्री रामजी : (मुस्कराते हुये) चित्राजी ! अवश्यमेव आज आपकी लीला से आनन्द आ गया। अभी प्रकृतिस्थ न होती तो जाने कौन-कौन सी लीला आपकी अपनी स्वामिनीजी के साथ होती....

(श्रीरामजी चित्रा की पीठ में थपथपी लगाकर....) वाहवा चित्राजी वाहवा !

चित्राजी : (हँसकर) आज आपके पांसे पव बारह पड़े हैं, हँस लें, हँस लें। कभी न कभी हमारे बेर-वन में भी बेर पकेगी।

श्री सिद्धिजी : अरी चित्रा ! इनके मूठ के आगे बड़े-बड़े तान्त्रिकों की तन्त्र विद्या कुण्ठित हो जाती है, हम अबलाओं की क्या कथा ?

चित्राजी : स्वामिनीजू ! हम जब अपनी लाड़िली किशोरीजू के साथ रहेंगी तब छलिये का छल नहीं चलेगा। बड़े-बड़े जादूगर उनके चरणों में अपना मस्तक रख करके अपना उदर-पोषण करने के लिये अपनी विद्या की सुरक्षा किया करते हैं।

श्री रामजी : कुँअर-कान्ते ! विनोद से विश्राम लेकर वसंतोत्सव का प्रारम्भ करें, जिससे समय का अतिक्रमण न हो ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : अभी-अभी आप अपने को रंग में रँगे देखियेगा किन्तु केलि प्रारम्भ के प्रथम श्याम सुन्दर रंग-केलि का आध्यात्मिक-रहस्य वर्णन करें, तो महती कृपा हो। हम लोगों के कर्ण आतुरता पूर्वक आप श्री की वाणी श्रवण करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

श्री रामजी : केलि-प्रिये ! आत्म-रंग में रंग जाने के लिये ही रंग-केलि की अभिव्यक्ति है। आत्मा के अतिरिक्त अन्य का अस्तित्व बुद्धि में न रह जाय, तभी रंग-केलि का रहस्यार्थ समझ में आ गया, जानना चाहिये।

श्री सिद्धिजी : सबसे श्रेष्ठ कौन-सा रंग है, प्यारे जू !

श्री रामजी : अलौकिक प्रकाश का पूंजीभूत सर्वश्रेष्ठ श्वेत रंग है सिद्धि कुँअरिजी जिसमें सभी रंग चढ़ गये से दिखाई देते हैं, वास्तव में चढ़ते नहीं। जैसे स्फटिक-मणि में जिस रंग की वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह उसी रंग में रँगी सी दिखाई देती है किन्तु मणि, स्वरूप ही में स्थित रहती है किसी रंग में परिवर्तित नहीं होती ।

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर ! आपकी सरहज की आँखों में एक मात्र श्याम रंग समा गया है। नयनों से जिस ओर निरखती है वह, उस ओर उसे श्याम ही श्याम दृष्टि गोचर होता है। अतएव मैं समझती थी कि श्याम रंग ही सर्वश्रेष्ठ है। (मुसकराकर) अब आपके सर्वमान्य अभिमत से यह अर्थ स्पष्ट सिद्ध हुआ कि बिना चन्दन-चर्चिता, चार्वाङ्गी चन्द्र-वन्दना सीताजू के, श्री राम रूप की यथार्थ सिद्धि नहीं होती।

श्री रामजी : कुँअर-वल्लभे ! परमोज्वल लोकातीत शुभ्र-तेज का पुंज जब अपने परम तेज से दृष्टा का विषय बनता है, तब दर्शन करने वाले की श्याम-पुतलियों का प्रतिबिम्ब उक्त श्वेत-तेज पर पड़ता है इसलिये उसे लोग श्याम तेज कहते हैं। सबसे प्रथम वह तेज गौर ही रहता है। तेज जब अपने स्वरूप को देखता है, तब वह गौर दीखता है। (मंद मुसकान युक्त) वास्तव में मेरा स्वाभिमत है कि गौर तेज के बिना श्याम तेज की असिद्धि ही सिद्ध होती है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! छोड़ें इस विषय को, यह बतलाने की कृपा करें कि हमारे और आपके इस रंग-केलि का सैद्धांतिक अर्थ क्या हुआ।

श्री रामजी : रंग-प्रिये ! अर्थ यह हुआ कि आप हमारे रंग में रँग जायँ और हम आपके। हम दोनों में कौन हम हैं और कौन आप हैं, इसकी पहचान पहुँचे हुये परम ज्ञानी मुनि भी न कर सकें।

श्री सिद्धिजी : गंगा-जमुना की एक धारा समुद्र बनकर अठखेलियाँ खेला करें...

श्री रामजी : हाँ, हाँ प्रिये ! यही अर्थ, यही अर्थ।

श्री सिद्धिजी : अच्छा प्यारे ! आज अपनी पिचकारी में भरे श्याम रंग से मुझे पूर्ण रूपेण रंग दें और अपने गौर रंग से आपको मैं, ठीक है न ?

श्री रामजी : (मुसकराकर) बहुत ठीक, बहुत ठीक ! आज की रंग-केलि का यही प्रयोजन है कि हम आप हो जायं और आप हम हो जाँय कुँअर-कान्ते ! इस अनोखे अद्वैत के आनन्द की अनुभूति बिरले प्रेमी और प्रेमास्पद जानते हैं।

श्री सिद्धिजी : (हँसकर) अच्छा प्यारे। अब शीघ्र रंग-स्थली में उतरना चाहिये आज जब हम, आप हो जायेंगी और आप, हम, तब अत्यन्त आनन्द आयेगा। हमारे प्राणनाथ भी मेरी जगह आपको लेकर परमानन्द की अनुभूति करेंगे। आनन्द ! आनन्द ! आनन्द ! !

श्री रामजी : (हँसकर) बहुत अच्छा प्रिये !

[गीत-वाद्य-नृत्य एवं अबीर-गुलाल, रंग पिचकारी आदि साहाय्य-सामग्रियों के साथ दोनों ओर से उमंग-भरी केलि का प्रारम्भ होता है.....]

पद : खेलत वसन्त दशरथ के लाल, सोहहिं अनुज अरु सुहृद बाल ।
सिद्धि-सदननि सरहज के संग, राजहिं सहचरि भरि के उमंग ।
डफ-डमरु और तबला मृदङ्ग, ढोल भेरी दुंदुभि उपंग ।
बाजत बहुविधि सुखप्रद सुवाद्य, नृत्यहि नारि भावहिं में माद्य ।

उभय ओरन उड़ावत अबीर पिचकारि मार होवत अधीर।
मारा मारि बहुतै मचाई, रंग-केलि कला कह को गाई।
वर्षि सुमन सुर-सुरतिय सुवृन्द, कहँहि जय जय रघुकुल सुचंद।
हर्ष बढ़्यो हर्षण दशहुँ ओर, आनन्द आनन्द आनन्द अथोर।

[केलि-विभोर उभय-पक्ष एक-दूसरे के छोड़े हुए रंग में सराबोर हो जाते हैं। अन्त में स्वपक्ष और पर-पक्ष का भान भूलकर रंग-केलि का आनन्द लेते हैं। पश्चात् जल-केलि करके, भोजनादि कर्त्तव्यों को करके विश्राम करते हैं।]

पटाक्षेप

सप्तपञ्चाशः दृश्यः ५७

[श्री सिद्धि कुँअरिजी, सिद्धि-सदन में सामयिक-साजों से सुसज्जित अनुपम हिंडोर कुंज के हिरण्यमय-हिंडोरे पर आसीन युगल-किशोर को झूलन झुला रही हैं। चित्रादि सखियाँ नृत्य-गीत और वाद्य की विशिष्ट कला के मधुरिम माध्यम से कला धर कौशल-किशोर को रीझ-रीझकर रिझा रही हैं। प्रकृति की प्रभा श्रावण की सम्पत्ति से संयुक्त होकर अप्राकृत आनन्द-कन्द रघुनन्द-चन्द्र को अपनी ओर आकृष्ट कर कृतार्थ होने का प्रयत्न कर रही हैं। नृपति-नन्दिनी-नन्दनजू अपनी चारु-चितवनि एवं मन्द-मन्द मुसुकान का जादू डालकर मधुरिम वचनावली द्वारा समस्त सारी-सरहजों को सुधा सिन्धु का समवगाहन करा रहे हैं श्री सिद्धिजी समयानुसार सेवा में संलग्न सभी की प्रसन्नता के लिए श्री रामजी से सामयिक वार्ताओं को कर-करके अपने ननद-ननदोई को सुखी करती हुई उनके सुख से स्वयं सुखी हो रही हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! श्रावण में झूलन, झूलना आर्य-संस्कृति और सभ्यता के अनुसार है या यों कहें कि संस्कृति और सभ्यता आर्य-नन्दनजू के झूलन में पधारते ही जीवन-सर्वस्व के अपनाने से अमर जीवन पा गई हैं। आज का अप्रतिम आनन्द, अलौकिक और अतीत है। अयोनिजा के साथ अयोनिज की शोभा, दामिनी से युक्त श्याम घन की स्पर्धा का विषय बन रही है। तभी तो रस की विपुल-वर्षा से रसिकों के हृदय-सरोवर उमड़ा रहे हैं।

श्रीरामजी : रस-वर्धिनी ! प्रकृति-सौन्दर्य के विषय का वर्णन करना अशक्य है, वह मुनियों की मरी हुई दृश्य-दर्शन की लालसा को पुनः मन के क्षेत्र में उपजाकर अपने में विलीन करने की विशेषता वाली है। श्रावण की सुषमा का सृजन प्रकृति पर ही प्रावलम्बित है। अस्तु एक तो सर्वाङ्गीण प्रकृति के सौंदर्य का आकर्षण दूसरे हमारी रस-रूपिणी सरहज का ससमाज रस वर्षाना, यदि रस के रसिकों को रसमय बना दे तो, इसमें आश्चर्य ही क्या ? अहा ! आज आपने रस-सृष्टि की वैस्तारिक-विधायिका बनकर विधिना के वैभव को विलज्जित करने का संकल्प कर लिया है क्या ?

श्रीसिद्धिजी : रस-मूर्ते !क्या कह रहे हैं ? ऐसी बड़ाई को लेकर क्या करूँगी मैं जिसके श्रवण करते ही सिर नीचा होकर मुझे आप युगल-मूर्तियों के दर्शन-लाभ से वञ्चित कर दे। रस-स्वरूप हमारे ननँद-ननदोई जहाँ हैं वहाँ ही रस-सृष्टि के सृजन-संरक्षण के व्यापार की प्रदर्शनी होती है अन्यथा आपात-रमणीय प्रकृति के परमाणुओं में सौंदर्य-सिन्धु का सीकरांश कहाँ ? जिस प्रकार अग्नि की सकासता से लौह-वृत्त में अग्नि का सादृश्य लोगों को प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार आप श्री के सान्निध्य से नीरस-प्रकृति-कार्य में भी सरसता की प्रतीति होने लगती है।

श्री रामजी : रसप्लुते ! रस-भोगियों को उनके भोग के लिये विस्तृत विशाल-भौतिक-जगत एवं आध्यात्मिक-जगत, रस-स्वरूप ही भासित होते हैं क्योंकि उनके ज्ञान में उक्त दोनों जगत, रस-ब्रह्म के ही शरीर हैं। रस के अतिरिक्त अन्य का ज्ञान न होने से वे रसिक उसी प्रकार रस-सिन्धु में निमग्न रहा करते हैं जिस प्रकार हमारी रस-रूपिणी श्याल-वधू। रसज्ञों के मत से यह वार्ता सत्य है कि किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व रस में प्रविष्ट होते ही रस-स्वरूप हो जाता है।

श्री सिद्धिजी : रसिकाधिराज ! आप श्री का दर्शन ही दिव्य-रस का मूल स्रोत है या यों कहें कि आप श्री ही वेद-वर्णित-रस हैं जिस जीव का आपके नाम रूप, लीला और धाम से सम्बन्ध हो जाता है, वह स्वयं रस का रात्रि-दिन अनुभव करने लगता है, इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं है स्वयं रसिकों का अनुभवी-हृदय ही प्रमाण है। आज अपनी झूलन-लीला की झाँकी के माध्यम से आप हम लोगों के हृदय को रस-सिक्त कर रहे हैं। इस सत्य का निष्कासन कृपा-सिन्धु की कृपा -दृष्टि के द्वारा हमारे बुद्धि प्रदेश से कदापि न होगा, चाहे आप हमें भुलाने के लिये प्रकृति वा मुझको करोड़बार रसमयी कहें।

श्रीरामजी : रस-प्रिये! वेद-वर्णित-ब्रह्म यदि रस-स्वरूप है तो उससे उत्पन्न सारी सृष्टि भी रस-स्वरूप है क्योंकि सत्य से असत्य का निर्माण शश-श्रृङ्ग के सदृश असंभव है अस्तु आप श्री रस-स्वरूप ही हैं।

श्री सिद्धिजी : चतुर-चूड़ामणि ! आप बुद्धि के विधाता एवं चित्त के चैतन्य हैं।स्वयं "श्री' जिसका समर्थन करेंगे उसका असमर्थन अपनी बुद्धि-विभूति के द्वारा कौन कर सकता है। जै हो आपकी सुघट-विघटित, अघटित-घटना-पटीयसी-बिरदावली की। रसिकेश्वर ! छोड़ें इस विवाद को। श्रावण की सम्पत्ति का सदुपयोग हमारे श्याम-सुन्दर सम्प्रति सुचारु रूप से कर रहे हैं, इससे अभिज्ञप्त होकर पावस-ऋतु अन्तर-हीन-हृदय से अपना सर्वस्व युगल-किशोर-किशोरी के चरणों में समर्पित कर रही है। अहा हा ! प्रकृति के हृदय का अविरल अनुराग ही तो उसकी आँखों से निकल-निकलकर वर्षा के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। धन्य है प्रभु के प्रति प्रकृति के प्रेम को ! धन्य है प्रभु के प्रति किये गये प्रकृति के कैंकर्य को और धन्य है, उसके स्वार्थ हीन प्रभु-प्रयोजनत्व को।

श्रीरामजी : प्रिये ! प्रकृति का प्रभाव एवं उसका पूर्ण प्रदर्शन प्रकृति-प्रेमियों का परम प्रेय है। प्रकृति अपनी आपात-रमणीयता से सबको अपनी ओर आकृष्ट किये रहती है। प्यारी ! सच पूछिये तो प्रकृति की प्रभा से प्रभावित हुये बिना परमेश्वर भी नहीं रह

सकता, मुझे तो वह बहुत प्रियकरी प्रतीत होती है, तभी तो प्राकृतिक-दृश्यों का दर्शन कर राम का मन वर्षा-ऋतु की वैशद्य-विभूतियों में बिहार कर रहा है।

श्री सिद्धिजी : प्रियतम ! प्रकृति का पातिव्रत सती-साध्वी के समान परम विशुद्ध है। वह पुरुष की अध्यक्षता एवं सकासता में रहकर पति-प्रसन्नता के लिये ही जगत के सृजन-संरक्षण और संहार का कैंकर्य किया करती है, स्वार्थ में उसकी कोई चेष्टा नहीं ऐसी अनन्य-प्रयोजनात्मिका पत्नी के प्रति प्रेम-दृष्टि से दृष्टि निक्षेप करना सत्-पति का सहज स्वभाव होता है जो सर्वथा औचित्य का आदर है। अस्तु, आप श्री अपने स्नेह-पूर्ण-नयनों से प्रकृति का प्रेक्षण कर लिये तो प्रकृति कृतकृत्य हो गई और उसका कार्य सफल हो गया। प्रभो! जो जीव प्रकृति के भोक्ता भगवान को न समझकर स्वयं भोक्तापन के अभिमान से भगवदर्पण किये बिना उसका उपयोग किया करते हैं, वे जीव यम-यातना के पात्र बने हुये सदा संसार-चक्र की परिधि में चक्कर लगाया करते हैं। कामिनी-काञ्चन और कीर्ति के सान्निध्य से उनके हृदय में हमेशा हलचल बनी रहती है, वासना अँगड़ाई लेती हुई बार-बार करवटें बदलती रहती है और अन्तर्देश में अतर्द्वन्द के कारण एक कम्पन व सिहरन की अनोखी अनुभूति होती रहती है इसलिये सीता-पति (प्रकृति-पति) की प्रकृति को स्वभोग समझना सीता-रमण को ही सर्वभावेन उचित है, अतिरिक्त जीव-समुदाय की अनाधिकार चेष्टा का अनौचित्य अतीत-काल में भी अक्षम्य है। रमण ! आप श्री को अपनी प्रकृति-प्रभा का अवलोकन, प्रकृति के रंग-मंच पर कर-करके परम सुखी होते देख सुखी होना ही इस अबोध-किंकरी का सहज-स्वरूप है।

श्री रामजी : ज्ञान-दीप्तिते! आपके ज्ञान की गरिमा एवं गहनता निमि-कुल-वधू के स्वरूपानुरूप है। सृष्टि का श्रृंगार सृष्टि कर्त्ता की, की हुई प्रदर्शनी है, वह स्वयं सृष्टि का सृजन करके सृष्टि में समाया रहता है और अपनी ही सृष्टि-प्रदर्शनी का प्रदर्शक बन करके उसी के साथ किलोल किया करता है परन्तु उसके मर्म को समझने में विधि-हरि-हर भी अनभिज्ञ बने रहते हैं। वही इस रहस्य को जानता है जिसे वह वरण कर अपना ज्ञान करा देता है। धन्य है उस परम तत्व की कृपाधिकारिणी हमारी सरहज को।

श्री सिद्धिजी : रघुनन्दन ! राम के रामत्व को हृदयङ्गम करके उसमें रात्रि-दिन रमण करना, रसिकेश्वर राम की रामा की अहैतुकी-अनुकम्पा का परिणाम है। किंकरी के अन्तर्जगत में जानकी-जीवन का निवास श्री जनक-नन्दिनीजू की कृपा से ही संभव हुआ है अन्यथा नीरस-देश में सरसता का संचार कहाँ ? श्रीमुख से धन्यवाद प्राप्त करके अवश्यमेव धन्य भाजना बन गई मैं जिसे आप श्री स्वगत स्वीकार कर लेते हैं, वह आपको सम्यक् प्रकार से समझकर आप से अभिन्न हो जाता है। धन्य है आपकी भगवती भास्वती कृपा को !

श्रीरामजी : रस-प्रिये ! श्रावण-सुख की सृष्टि-समुत्पादिका आपकी योजनाओं का अन्वेषण जब आपके चित्त में रमने वाला राम करता है तब यह सत्य स्वाभाविक समझ में आ जाता है कि आपकी सारी चेष्टायें और योजनायें अपनी ननँद और ननदोई को निर्मलानन्द का निर्माण करने के लिये ही हुआ करती हैं। भव्य-भावों से भावित-भावितात्माओं की भाव-देह के संकल्पानुसार, उनके शरीर और प्रकृति में परिवर्तन होता है, इस बात का समर्थन सभी मनीषी एक स्वर से करते हैं। अस्तु सर्व-

सिद्धियों की सिद्धि जिनके हाथ में है, उन हमारी सरहज का संकल्प ग्रीष्म-काल की अत्यधिक-ऊष्मा के समय में भी श्रावण-सुख का दिग्दर्शन करा सकता है। हमें तो ऐसी प्रतीति होती है कि अपने आराध्य की अनेक विधि सेवा करके उन्हें सुख पहुँचाने के लिए प्रबुद्ध-भावुकों ने अन्तरिक-चेतना के संकल्प से अखंड-काल का खण्ड करके कल्प मन्वन्तर-युग-वर्ष-अयन-ऋतु-माह-पक्ष-दिन-प्रहर-घड़ी और पल का विभाजन कर लिया है।

श्री सिद्धिजी : मन-मोहन ! आप ही भाव, भावुक और भावनास्पद हैं, आप ही प्रकृति और पुरुष हैं और आप ही खण्ड व अखंड-काल हैं। आप श्री का संकल्प ही संसार है और आप ही सब ओर से सबको आवृत्त किये रहते हैं। यह जगत आपका चिद्-विलास है जिसके दृष्टा-दर्शन और दृश्य आप श्री ही हैं। अपने आपको आप अपने से ही जानते हैं अन्य कोई आप की अनन्त महिमा के अभिज्ञान से अछूता ही रहता है। हमारे मुख को ऐश्वर्य की ओर मोड़कर माधुर्य-सुधा की माधुरी से वंचित करने के साधन की शिक्षा का श्री गणेश करना चाहते हैं क्या आप? चलिये, श्री किशोरीजू की कृपा से माधुर्य-सिन्धु अपने में आत्मसात करके अब हमें किसी काल में पृथक करने वाला नहीं है चाहे आप कितना भी प्रयत्न करें।

श्री रामजी : प्रिये ! स्वयं अपने ननदोई में विश्व की झाँकी झाँकने लगी और दोष हमारे शिर पर मढ़ रही हैं। बड़ी चतुर हैं हमारी श्याल-वधू !

श्री सिद्धिजी : चतुर-चूड़ामणि ! यह सब कौतुक-प्रिय का कौतुक है, क्या आप नहीं जानते ? प्रकृति एवं ऐश्वर्य का आवरण डालकर जीव को अपने माधुर्य-महोदधि के दर्शन से वंचित रखना उदार-शिरोमणि की वंचकता नहीं तो क्या है? यह सब चौर्य-चूड़ामणि का चातुर्य है कि चापल्य ? छोड़िये इन बातों को। देखिए तो सही श्रावण में सरिताओं के सम्प्रवेग को, कल्लोल एवं उत्ताल-तरंगों को और उनकी आतुरता को।

श्री रामजी : (मुसकानयुक्त) कुँअर-कान्ते ! सरिताओं की चंचलता एवं तीव्रता अपने पति अम्भोधि-देव के क्रोड़ में क्रीड़ा करने के लिये, अपने कान्त के अंक में आरोहण कर विलसित-वदना-विलास करने की कामना किया करती है।

श्री सिद्धिजी : हास प्रिय ! आप हास-विलास की वार्ता कर रहे हैं किन्तु मैं सत्य कहती हूँ वास्तव में नदियों का सम्प्रवेग नदीशाभिमुख इस प्रकार है कि जिस प्रकार नारी-जगत का नर-कुल-भूषण नर-पति-नन्दनजू के दर्शन के लिए दौड़ना। (श्रीरामजी मन्द मुस्कराते हुए किंचित संकुचित हो जाते हैं।) प्यारे ! सरिताओं से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जैसे इनका बहना सिन्धु का संगम किये बिना विरमित नहीं होता उसी प्रकार जीवात्माओं का संसार-प्रवाह में प्रवाहित बने रहना तब तक बन्द नहीं होता जब तक वे सुख के सिन्धु-सीता-पति का चरण-चुम्बन नहीं करते।

श्रीरामजी : चारु-नेत्रे ! श्रावण-मास की हरीतिमा का दृश्य दर्शनीय तो है ही, साथ ही पोषक भी है।

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर! श्याम रंग की बलिहारी है, बलिहारी ! उसका सहज-सौन्दर्य उद्दीपक और अत्यन्त आकर्षक तो होता ही है, साथ ही संजीवनी शक्ति का संचार करता हुआ प्राणियों को प्राण समान प्रिय भी होता है, जैसे हमारे ननदोई का

दृष्टचित्तापहारी श्याम–शरीर ! अहो ! वह नयन–पथ में आने वालों को अमृत के समान अमर बनाने में सर्वदा सक्षम और संलग्न रहता है।

चित्राजी : देवि ! कनकाङ्गी श्री किशोरीजू के श्री–अंग में हरित–वर्णा–शाटिका की शोभा का संप्रेक्षण करके धरा–देवी ने अपने सौंदर्य को समुन्नतशील बनाने के लिये हरीतिमा की हरी–साड़ी अवधारण कर ली है क्या ?

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! सीताकान्त को नेत्र–सुख–सन्दोहन करने के लिए प्रकृति–नायिका ने अपने नर्तन–काल में हरी–रंग की साड़ी पहनकर धरा धाम को प्रतिबिम्बित कर दिया है।

श्री रामजी : वाक्य–कुशले! मयूरों के मधुर–मधुर बोल एवं नृत्य, श्रावण–सुषमा का सम्यक्–सम्वर्धन कर रहे हैं। अहा ! मोरों के उक्त–वैभव को देखकर किस द्रष्टा का मन–मोर उनके स्वर में स्वर मिलाकर नृत्य न करने लगता होगा।

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर! जैसे श्याम–घन के दर्शन से मधुर–भाषी मोर अपने पंख फैलाकर प्रेम–वश नृत्य करने लगता है वैसे ही आप श्री के रूपौदार्य का दर्शन करते ही स्थावर और जंगम–जगत का मन–मयूर नृत्य कर–करके विभोर बन जाता है। धन्य है श्याम सुन्दर के सौन्दर्य, माधुर्य और सौशील्य युक्त स्वरूप को, जिसे देखकर निमिपुर–निवासिनी–सीमन्तिनियों का मन–मयूर प्रेम में उन्मत होकर नर्तन क्रिया से विरत होना ही नहीं चाहता। हम गगन के श्याम–घन को श्रेष्ठ कहें कि धरा–धाम के श्यामले–सुहावने–मोहक मेघ को।

चित्राजी : राम–प्रिये ! गगन में गमन करने वाला श्याम–घन जब धरा–धाम को सुशोभित करने वाले नील–मेघ के सादृश्य का स्वप्न भी नहीं देख सकता तब उसकी आंशिक–समता के लिये उसका शिर न उठाना स्वाभाविक है जो अन्तर चेतन और जड़ में एवं दिन और रात में तथा ज्ञान और अज्ञान में है, वही अन्तर धरा–धाम के श्याम–मेघ और गगन के श्याम–मेघ में है।

श्रीरामजी : रूप–रसिके ! आप सबकी काली–काली कजरारी–कोरदार–अनियारी आँखों ने धरा–धाम के श्याम–घन को अपना विषय बनाकर अधिक काला कर दिया है और उसके रंग में अपने रंग का आवरण चढ़ाकर नया–निखार ला दिया है इस लिये अपनी कृति को अप्रतिम बतलाकर उसमें आसक्त बने रहना निमि–नगर की नागरियों के नयनों का विशिष्ट–व्यापार बन गया है। अहो ! अपनी–अपनी कृतियों की कला सभी कलाकारों को अच्छी लगती है अस्तु आप लोगों को अपनी कला के सौंदर्य पर रीझे रहना कोई आश्चर्य नहीं है।

श्री सिद्धिजी : मन–मोहन ! विपरीत–वार्ता करने की बानि ने आप श्री को उपर्युक्त–वार्ता करने की प्रेरणा दी है क्यों? हम सबकी अतृप्त आँखों में सम्प्रवृष्ट होकर श्याम सुन्दर ने सारे संसार को श्याममय दिखाई देने के लिये चक्षुओं में श्याम–रंग का चश्मा चढ़ा दिया है कि हमारी अश्रु भरी आँखों ने आपको काला कर दिया है ! विनोद प्रिय की बलिहारी है बलिहारी।

चित्राजी : स्वामिनीजू! आप श्री के वचन सत्य से संश्लिष्ट एवं सारसंगर्भित हैं। श्याम सुन्दर का श्याम–शरीर जन्म–जात है,, काले में किसी रंग का आवरण नहीं चढ़

सकता, वही सब रंगों को अपने रंग में आत्मसात करके अन्य के अस्तित्व रखने में असहिष्णु होता है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! श्रावण–सुख को समुन्नतशील बनाने वाले कारे–कारे बादलों के बीच दामिनी दमक–दमककर उनकी शोभा को सहस्त्रशः सम्वर्धित कर देती है। अहा ! देखते ही बनता है।

श्रीरामजी : कुँअर–वल्लभे ! तरुण–तमाल के बन में बिहार करती हुई विबुध–वधू के समान विद्युत–प्रभा का दर्शन बादलों के बीच हो रहा है। धन्य है श्रावणी–शोभा को।

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर ! सच पूछिये तो घन–प्रभ आपके श्याम–शरीर में लिपटी हुई विद्युत–वर्णा विदेहराज–नन्दिनीजू के सदृश घन के बीच दामिनी की द्युति दृष्टिगोचर हो रही है। अच्छा .... आप श्री बतलाने की कृपा करें कि हमारी उपमा, उपमेय के सर्वथा अनुरूप है या नहीं ?

[श्रीरामजी मन्द–मुसुकाते हुये संकोच से शिर नीचा कर लेते हैं।]

श्रीरामजी : कोविदे ! आप ही बतलायें कि हमारी उपमा औतमत्व और औचित्य को लिये हुये है कि नहीं ?

श्री सिद्धिजी : प्यारे आप श्री की प्रत्येक चेष्टायें औचित्य का अनादर कभी नहीं करती, किन्तु क्या करूँ? मुझे तो अपनी उपमा का स्मरण आँनन्द के सिन्धु में आत्मसात करके विभोर बना देता है।

श्रीरामजी : नृपति–कन्यके ! श्रावण–सुखाभिलाषियों के मन को रिझाने वाली रिमझिम–रिमझिम की मधुरिम–वर्षा झूलन में बैठे हुए मुझको अत्यन्त आवश्यक और सुखावह सूझ रही है।

श्री सिद्धिजी : रसिकेश्वर ! रस की सृष्टि ही तो रसिकों की जीवनी–शक्ति है। रस की रिमझिम–रिमझिम झड़ी लगने पर रसिकों को उसी प्रकार सान्द्रानन्द की सान्द्रानुभूति होती है जिस प्रकार श्रावण की दृष्टि से सूखती हुई बनस्पति को।

श्रीरामजी : रस–विग्रहे ! वर्षा की बड़ी–बड़ी बूंदों का आघात पर्वत–प्रदेश को उसी प्रकार सह्य है जैसे हमें आप लोगों की गाली। क्या किया जाय। रस–लोलुपों की रस–ग्राह्यता का प्रकार ही ऐसा है।

श्री सिद्धिजी : जीवन–सर्वस्व ! रसिक–लोगों की रस–ग्रहण करने की प्रक्रिया रसिक–जन ही जानते हैं जब जैसा रसास्वाद उन्हें ग्रहण करना होता है तब तैसा ग्राह्यता के प्रकार का निर्माण वे स्वयं कर लेते हैं, जैसे आप श्री।

श्रीरामजी : प्रिये ! उमड़नि–घुमड़नि के साथ मेघों की गंम्भीर–गर्जनि पावसपति श्रावण की जय–घर्षिनी नाद के समान निनादित हो रही है। श्रावण–सुख के अभीप्सुक सुन–सुनकर बड़े सुखी हो रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : श्रावण–बिहारीजू ! मेघों की मधुर–मधुर गर्जनि जैसी मयूरों को बहुत ही प्यारी और हितकारिणी होती है, वैसी ही आप श्री की मधुर–मधुर बोलनि हम लोगों को ही नहीं अपितु सभी श्रवणवन्तों को सुधा–सुख से संप्लावित करने में सर्वभावेन समर्थ है।

श्रीरामजी : प्रिये ! दादुरों की ध्वनि चारों ओर श्रवणों को सुनाई दे रही है मानों पावस–पति श्रावण की स्तुति, वटु–समुदाय के द्वारा हो रही है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! आप श्री के चरण–चुम्बन करते हुए नवल–नूपुरों की ध्वनि जैसे आपके पद–न्यास करते समय स्वाभाविक होती रहती है, वैसे ही धराधाम में पावस के पदार्पण करते ही दादुरों की ध्वनि चारों ओर सुनाई देने लगती है। हाँ ... ध्वनि में मधुरता और कर्कशता का अवश्य अन्तर है।

श्रीरामजी : भद्रे ! अरुण वर्णा–असंख्य–वीर बहूटियाँ हरित–वर्णा भूमि में इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं जैसी हमारी सरहज की हरी–साड़ी में लाल–लाल–बूटियाँ।

श्री सिद्धिजी : भद्र ! ये वीर–बहूटियाँ हरियाली से युक्त पृथ्वी में इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं जैसे रंग–केलि के समय आप श्री के श्याम–शरीर में गुलाल के कण।

श्री रामजी : उत्सव–प्रिये ! श्रावण–सुख का विस्तार करने वाली आपकी चर्या हमारे चित्त को चंदन के समान शीतल करके आनन्द से ओत–प्रोत कर रही है। आज का वैशिष्टय और वैलक्षण्य कुछ और ही है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! आप श्री के अंगों में श्रावण की "श्री" सम्पूर्णतया दृष्टिगोचर हो रही है। आप स्वयं सुख–स्वरूप हैं, आपका आनन्द असंकीर्ण है अन्यापेक्षित नहीं। अपने जनों को बड़ी बड़ाई वितरण करना आपके स्वभावानुकूल है।

श्रीरामजी : प्रिये ! हमारे मन में यह इच्छा उत्पन्न हो रही है कि आपके मुख से सामयिक–संगीत श्रवण कर हम सुख–सिन्धु का समवगाहन करें।

श्री सिद्धिजी : गान्धर्व–विद ! आप भुवन–श्रेष्ठ संगीतज्ञ हैं आप अपनी किंकरी को अपने कैंकर्य में नियुक्त कर उसे सेवा–सुख–सम्प्रदान करने का संविधान बना रहे हैं। जै हो जन–सुख–सुखी–करुणा–वरुणालय जू की, मैं अवश्य आपके अभिमत–कैंकर्य को करके अपने को कृतार्थ करूँगी।

[श्री सिद्धिजी वीणा हाथ में लेकर संगीत प्रारम्भ करती हैं, तन्त्री की झनकार से भवन–प्रदेश भव्य–भावना से भर जाता है।]

पद : हिंडोरे झूलत लाड़िली–लाल।
जनक–लडैती विद्युत वर्णा, घन–द्युति दशरथ बाल।
सिद्धि–सदन स्वर्णिम–निकुंज में, रसिकन हेतु रसाल।
चितवनि–मुसुकनि मोहनि डारी, ह्वै रहै दोउ निहाल।
पावस–पति श्रावण की सम्पति, सेवति सहजी चाल।
उमड़ि–घुमड़ि–घन गर्जत कारे, दमकति दामिनी–माल।
रिमझिम–रिमझिम वर्षत बदरा, दादुर–धुनि निशिकाल।
हरित–भूमि हर्षावति हिय को, सरिता, बहहिं उताल।
नृत्य–गीत वर–वाद्य ते रिझवहिं, हर्षण सखी विहाल।

श्रीरामजी : (प्रेम में पगकर) कुँअर–कान्ते । आपकी संगीत–कला को धन्य है जिसको श्रवण कर मेरा मन सुनने से विराम नहीं लेना चाहता किन्तु रात्रि विशेष व्यतीत हो चुकी है अस्तु अब सबको विश्राम करना चाहिये। ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : कलाधर ! आप श्री सर्व–कलाविद हैं, आपका ज्ञान अखण्ड और अनन्त है। आप जब जिसका जैसा निर्माण करना चाहते हैं, उसी समय वह वैसा निर्मित हो जाता है। आपकी इच्छा–शक्ति से ही किंकरी में कुछ संगीत–कला का दर्शन स्वयं श्री को हो रहा है। प्यारे ! अवश्यमेव बहुत विलम्ब हो गया है, अब आप शयनकुंज को पधारें।

[श्रीरामजी को शयन कराने के लिए ससमाज श्री सिद्धिजी हिंडोर–कुंज से प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

अष्ट पञ्चाशः दृश्यः ५८

[श्री सिद्धिजी अपनी सखियों को लेकर श्री सीताराम–विवाहोत्सव का अभिनय अपने सदन में पंच–ध्वनि एवं साहाय्य–सामग्रियों के साथ कर रही हैं।]

पद : दुलहा–दुलहिन की बलिहारी, सखी री।
सुख–सुषमा श्रृंगार के सागर, श्याम गौर वपुधारी।
सुन्दरता को सार, सारतम, लै विधि इनहिं सम्हारी।
धोती पीत पीत वर जामा, विद्युत के अनुहारी।
व्याह विभूषण अँग–अँग धारे, मोहत मदन अपारी।
माथे मौर औ मौरी सोहै, सेहरा की छवि न्यारी।
विधि–हरि–हर सह शक्ति लुभाने, इत ते टरत न टारी।
हर्षण सिद्धि व्याह रस छाकी, बनि गई सत आकारी।

[अविकसित कमल–कली के समान काम–गंध से रहित परम सुन्दरी दो सखियों को श्री किशोरीजी व श्रीरामजी का स्वरूप बनाकर तल्लीला में तल्लीन हो रही हैं। अपनी सरहज के आग्रह से स्वयं अवनिप–कुमार श्रीरामजी अवनि–कुमारी समेत अभिनय देख रहे हैं। आनन्द–सुधा का सिन्धु सब को सब ओर से आवृत्त किये हुये है। दृश्य–दर्शन–द्रष्टा की त्रिपुटी का विलीनीकरण हो रहा है।]

श्रीरामजी : [अभिनय–स्वरूप को देखकर संशय–युक्त] रामे ! मैं राम हूँ या ये राम हैं ? हाय ! मेरी बुद्धि भ्रम के बन में विभोर होकर भ्रमण कर रही है अस्तु आप अपने रमण को स्वास्थ्य प्रदान करें। आप श्री की उपस्थिति में भी असंशयात्मा का स्वरूप संशय–शील बन जाने के कारण आत्म–प्रसाद से सदा अछूता बना रहेगा क्या ?

श्री किशोरीजीः प्राणनाथ ! मैं भी आप श्री से सविनय यही पूँछना चाहती थी कि मैं सीता हूँ कि ये सीता हैं? अहो ! हम दोनों का व्याह सम्पादन हो गया है और इनका हो रहा है केवल अन्तर इतना ही है। किसी दर्श एवं चित्र के आधार से तो यह संशय का सिंह हम लोगों पर आक्रमण नहीं कर रहा है।

श्रीरामजी : हृदयानन्द–वर्धिनीजू ! इनका अप्रतिम–सौन्दर्य आपके मन–मोहन का मन आकर्षित तो कर रहा है किन्तु साथ ही इनको अपने से पृथक परिभासित होते,

देखकर स्पर्धा का विषय भी बन रहा है। अहो ! काय-सम्पत्ति-शालिनी अनुपम-झाँकी अवश्य झाँकने योग्य है जो सौन्दर्य-सार को अपने माधुर्य-सुधा का पान कराकर मुग्ध करने में सक्षम हो रही है। चित्र का चमत्कार तो यह कदापि नहीं है, प्रियाजू !

श्री किशोरीजी : हे हृदयानन्द-वर्धनजू ! व्याह-भूषण-भूषित व्याह-विधि को संपादन करने वाले यह राम-सीता अवश्यमेव अपने रूपानुरूप सर्वथा दृष्टिगोचार हो रहे हैं। किन्तु क्या करूँ? मेरा मन भी स्पर्धा से शून्य नहीं। अहो ! इस मिथिला में दो राम और दो सीता होना सर्वथा असंभव है, आज वैसे ही लग रहा है जैसे एक गुफा में दो सिंह और दो सिंहनी किसी के द्वारा बरबस बेंड़ दिये गये हों।

श्रीरामजी : जनकात्मजे ! भविष्य में विधि का क्या विधान है ? विषम एवं विकट परिस्थिति अकस्मात आविर्भूत होकर संतुलित को असंतुलित बनाने में प्रयत्नशील है। हाय ! अपनी सरहज की सेवा को स्वीकार कर जिस सुख का सम्यक् अर्जन करता था, क्या मैं अब उस सुख का समनुभव न कर सकूँगा हाय ! मेरी श्याल-वधू अब इन राम में अपने मन को रमाकर मुझसे तटस्थ रहेंगी क्या ?

श्री किशोरीजी : सूर्य-कुल सूर्य ! आज मेरे कलेवर को भी अभिनिवेश के आधिक्य का आन्दोलन कम्पायमान कर रहा है। लगता है कि मेरी भाभीजी मुझे विस्मृति के गर्त में डालकर नूतन सीता को ही सर्वस्व मान बैठेंगी। हाय ! भातृ-भार्या से विनिस्सृत प्रेम-सुख का सम्भोग न कर सकूँगी मैं।

श्रीरामजी : प्रिये ! अपने ज्ञान-वैभव से आप सत्य-सत्य बतलायें कि मैं राम हूँ या ये राम हैं? पुनः प्रश्न करने का कारण अपने हृदय की कृशता और संशय है, स्वयं मैं स्वस्वरूप में स्थित हूँ फिर भी अपने स्वरूप के अर्थ से अज्ञापित-सा प्रतीत हो रहा हूँ।

श्री किशोरीजी : प्राणनाथ ! सीता के स्वामी कौशिल्यानन्द-वर्धन दाशरथी राम आप श्री ही हैं, यह ज्ञान दासी की बुद्धि में विशेष रूप से प्रकाशित हो रहा है किन्तु मुझे अपने विषय में स्वयं का भ्रम, व्यामोह उत्पन्न कर रहा है अस्तु, आप श्री यह बतलाने की कृपा करें कि जनक-प्रसूता जानकी मैं हूँ कि ये हैं ? हाय ! द्वन्द्वातीत को भी द्वन्द के दुख का स्पर्श। आश्चर्य ! महा आश्चर्य !!

श्रीरामजी : प्रिये ! जनक-प्रसूता जानकी सीता आप श्री ही हैं, इस दृढ़-ज्ञान का सूर्य मेरे हृदयाकाश में सदा एक रस उदित रहकर संशय-रात्रि के आने का अवकाश ही नहीं देता।

श्री किशोरीजी : प्यारे ! आप श्री को अपनेपन के भ्रम ने और मुझको स्वयं के संदेह ने चाञ्चल्य की वेदी में स्थापित करके कैसी उथल-पुथल मचा दी है, कुछ कहा नहीं जाता।

श्रीरामजी : प्रिये ! उथल-पुथल क्या ? आज तो रामत्व और सीतात्व ही सन्देह के पंक में प्रविष्ट हो गया है, जिनके निकालने का कोई साधन अन्तर्दृष्टि में नहीं आ रहा है।

श्री किशोरीजी : प्राणनाथ ! रामत्व और सीतात्व तो अजर-अमर और सनातन है, उसमें भ्रम और सन्देह नास्तिक ही किया करते हैं परिणाम में वे नास्तिक-वादी उस अमृततत्व के अस्तित्व में किंचित मात्र कमी न करके स्वयं को खो बैठते हैं। प्रभो ! वर्तमान संदेह तो राम और सीता के सगुण-साकार-विग्रह में है।

श्री रामजी : प्राण–प्रिये ! सुपुष्प से सुगन्धित इत्र जैसे परिभासित होता है वैसे ही राम और सीता के सुविग्रह पर ही रामत्व ओर सीतात्व प्रावलम्बित है अस्तु क्या इस सन्देह के शमन करने का कोई साधन बतला सकती हैं ? अन्यथा रोग के असाध्य होने पर आयुर्वेद को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ेगी। आप में रमण करने वाले राम का मन आपके रहते व्यथित और व्यामोहित हो जाय, यह आपके अनुरूप न होगा।

श्री किशोरीजी : प्राणेश्वर ! मेरी भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों एवं उनकी प्रीति–प्रतीति और सुरीति पूर्ण आप श्री के सेवन की प्रक्रिया से सन्देह का समूल संहार हो सकता है।

श्री रामजी : प्रिये ! अनन्या श्रीधर–कुँआरी श्री सिद्धि कुँअरिजी तो मुझसे अतिरिक्त अन्य श्री सीताराम के विवाह–सम्पादन की साज–सम्हाल कर रही हैं, मैं कैसे उनसे अपने यथेष्ट अर्थ की प्राप्ति कर सकूँगा ?

श्री किशोरीजी : प्राणनाथ ! वैवाहिक–कृत्य कराकर नवीन ननद–ननदोई के साथ कोहवर–कुंज में श्री भाभीजी पधार रही हैं, हम लोग वहीं चलकर अपने सन्देह के शमन करने का साधन करें। ठीक हैं न ?

श्री रामजी : प्राण–वल्लभे ! आप श्री की सम्मति से सन्देह का अस्तित्व ही न रह जायेगा, यह मुझे पूर्ण विश्वास है। पधारें .... कोहवर–भवन को।

[युगल–सरकार कोहवर–कक्ष में पहुँच जाते हैं, सिद्धि कुँअरि जी अनुकरण–लीला–स्वरूपों की सेवा में तन्मयता से संलग्न हैं उन्हें यह ज्ञान न हुआ कि हमारे हृदय–धन के धनिक यहाँ पधार गये हैं वे देखकर भी नहीं देखतीं, उनके ज्ञान में युगल–किशोर वैवाहिक–स्वरूपों के प्रतिबिम्ब हैं जो मणि खम्भ में पड़ रहे हैं। श्री राम जी व श्री किशोरी जी उन स्वरूपों में संमोहित होकर, सिद्धि कुँअरिजी से वार्तालाप किये बिना बोल उठे।]

श्रीरामजी : ए जी ! आप राम हैं या हम राम हैं ? या दोनों राम हैं ?

लीला स्वरूप राम जी : ए जी ! राम हम हैं आप तो हमारे चैतन्य–प्रतिबिम्ब हैं। निर्मूल–शंका का समाधान कराने कैसे चले आप ?

श्रीरामजी : ए जी ! शिव–चाप को चढ़ाकर एवं खण्डन कर श्री जनक–प्रसूता जानकी के साथ परिणय करने वाले दाशरथि–राम हम हैं। आप कौन हैं ? कहाँ से आये हो? हमारा प्रश्न सापेक्ष है किन्तु आप श्री का उत्तर निर्पेक्ष प्रतीत होता है।

लीला स्वरूप राम : ए जी ! सिद्धि कुंआरी जी के ननंद का ब्याह अपने साथ करने वाले उनके ननदोई तो हम हैं, आप कौन हैं? कहाँ से आए हैं? हमारा उत्तर स्वरूपानुरूप है किन्तु आपका प्रश्न औपाधिक प्रतीत होता है अन्यथा शंका कहाँ?

श्री रामजी : ए जी ! पुण्य तोया जाह्नवी के समान जनक–प्रसूता जानकी तो ये हैं जो हमारे वाम–भाग की शेभा को परिवर्द्धित कर रही हैं ? आप तो किसी कुशल कलाकार की बनाई नूतन–विदेह–कुमारी के संग अपना ब्याह कर रहे हैं, जो साक्षात सीता की समता करने मे सक्षम हो रही हैं।

लीला स्वरूप राम जी : ए जी ! जनक–नन्दिनी यही हैं जिनका परिणय हमारे साथ हुआ है। चलें, चलें आप, कोहवर–कुंज से, कोहवर–बिहारी तो हम हैं आपको यह

ज्ञान नहीं है कि नई सीता और नये राम का आविष्कार ब्रह्मा के कारखाने में भी सर्वथा असंभव और अशक्य है।

श्री किशोरीजी : ए जी ! सिद्धि-सदन की स्वामिनी सिद्धि कुंअरि की ननद तो हम हैं, आप तो बनावटी हैं बनावटी ।

अभिनय किशोरी : ए जी ! सिद्धि कुंअरि जी मेरी भाभी हैं मेरी, इसीलिये तो मेरी सेवा में सादर संलग्न हैं। आपकी होती तो आपका कैंकर्य करतीं, चलें, चलें सिद्धि-सदन की सीमा से बाहर ! सत्य में असत्य का खोल ढाकने चली हैं।

श्रीरामजी : अरे भाई ! झगड़ा मत करो। सच्चे राम-सीता तो हम लोग हैं। आपका दुराग्रह विवेक-शून्य और अहंकार-मूलक है।

लीला स्वरूप राम जी : अरे ! भाई ! झगड़ा हम करते हैं कि आप ! हमारे ब्याह में विघ्न मचाने के लिये कहाँ से धरे-धराये अनायास आ गये आप! अन्योत्कर्ष की असहिष्णुता आपके दुर्व्यवहार से पद-पद में अपना मुखड़ा दिखाने का दुःसाहस कर रही है।

श्रीरामजी : अरे मित्र ! हम, और आप परस्पर यदि वास्तविकता का निराकरण करने में अबोध एवं असमर्थ हैं तो किसी तीसरे व्यक्ति-विशेष से निश्चय कर लेना चाहिये। ठीक है न ? आप अपने मनोगत-भावों का प्रतिबिम्ब ही हमारे सद्व्यवहार के आदर्श में अवलोकन कर रहे हैं।

लीला स्वरूप राम जी : अरे ! मित्र ! हमारे अन्तःकरण जब हमको राम बतला रहे हैं और हम भी अपने को राम से अतिरिक्त अकिंचित पाते हैं तो हम अन्य से अपने को क्यों समझे ? अन्य से अपने को समझने के लिये वह जाय जिसे अपने में सन्देह हो।

श्री रामजी : अरे मित्र ! आप जैसा ज्ञान और अनुभव तो हमको भी है। प्रश्न यह है कि मिथिला पुरी में दो सीता और दो राम का रहना असंगत और असंभव है क्योंकि पुरी के प्रधान पुरुष के एक पुत्री सीता हैं तद्नुसार एक जामाता राम हैं इसिलये आप निर्णय कराने का सुनिश्चय करें या स्वयं को समझाकर निज को राम कहने के अप्रतिम आग्रह का परित्याग करें। रत्न-पारखी जौहरी के समाज में, स्वर्ण-सम्पुट में सुरक्षित आपके नकली-रामत्व का रत्न कहीं कौड़ी के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा तो आप श्री हँसी के पात्र बन जायेंगे इसलिये हमारे वचनों का अत्यन्त अनादर करके आप उच्छृंखल और स्वेच्छाचारी न बनें।

लीला स्वरूप रामजी : अरे ! मित्र ! अच्छा है, आप अपनी रूचिकर-वार्ता का वास्तविकत्व, विनिमय द्वारा नहीं प्राप्त कर पाते तो चले जहाँ, जिस न्यायालय में चलना हो । साँच को आँच कहाँ ? स्व में परस्व का स्पर्श कहाँ ?

श्रीरामजी : अरे ! मित्र! हमारे और आपके पारस्परिक-झगड़े का निपटारा करने वाले न्यायाधीश आपके दर्शन-स्पर्शन से विभोर बने हुये सिद्धि कुंअरि नाम के हैं, जो आपकी ओर मुख किये हुये आप ही के समीप बैठे हैं और हमारे असम्मान की भावना से भरे प्रतीत हो रहे हैं अस्तु आप अपने पक्ष के ही उन्हें मानकर उनसे न्याय कराने में हिचक न करें।

लीला स्वरूप रामजी : क्यों सिद्धि कुँअरिजी! हम लोग ही तो आपके ननद-ननदोई हैं, यह वार्ता सत्य है कि नहीं ?

श्री सिद्धिजी : मेरे प्यारे ! आप कैसे यह असामयिक और अनर्गल प्रश्न कर रहे हैं ? हमारे प्राणों के प्राण ननदोई तो आप श्री ही हैं। आपके ज्ञान-गांभीर्य की गरिमा को आप श्री की वार्ता अज्ञान के गहरे गर्त में गिराने जा रही है क्या ? या विनोद प्रिय को कोई हास-विलास का भाव सूझ रहा है।

श्रीरामजी : (श्री सिद्धिजी को स्पर्श कर) क्यों मेरी श्याल-वधू ! सुनैनानन्दवर्धिनी-सीता तथा कौशिल्यानन्द-वर्धन-राम तो हम लोग ही हैं कि कोई अन्य है ?

श्री सिद्धिजी : मेरे प्राण-प्रियतम ! इस प्रकार के बार-बार प्रश्न करने की क्या आवश्यकता है ? मेरे ननदोई ! आप ही हृदय के सर्वस्व श्याम-सुन्दर रघुनन्दन राम हैं और ये मेरी लाड़िली ननँद सीता हैं। अहो ! श्रीराम और सीता को स्वयं का सन्देह मुझसे बार-बार प्रश्न करने के लिये प्रेरणा दे रहा है क्या ? या प्रेम -सिन्धु में भाव की लहरों का आन्दोलन हो रहा है।

[श्री सिद्धिजी के कथन से सन्देह वृद्धिंगत हो जाता है। तदनुसार उभय-पक्ष में अपने को राम तथा सीता समझने की दार्ढयता उत्पन्न हो जाती है पुनः परस्पर वाद-विवाद के कारण उभय-पक्ष स्पर्धात्मक लीला कर-करके शोकातुर होने लगता है।]

श्रीरामजी : (साश्रु) हाय ! हाय ! राम के अतिरिक्त अपने को अन्य चिंतन करना आत्मा को किंचित सह्य न होगा। हाय ! ये मुझे क्यों राम न कहकर अपने को राम कहते हैं। आश्यर्च ! महा आश्चर्य !! श्री सिद्धि कुँअरिजी का भी ज्ञान, प्रकृति में स्थित न रहने के कारण विस्मृति के गहरे गर्त में गिर गया है। हाय ! आज कौन-सी बला का आक्रमण मुझे स्व-स्वरूप से विचलित करने का उद्योग कर रहा है जिसके प्रयास का प्रभाव बहुत गहराई तक पहुँच गया है।

लीला-स्वरूप-राम जी : (साश्रु) हाय ! हाय ! अभी-अभी विदेह-नन्दिनीजी के साथ मेरा विवाह हुआ है तो भी मुझे राम से अतिरिक्त कहने वाले हमारे आकार के अनुरूप आकार वाले ये महाशय कहाँ से आ गये ? हाय ! क्या करूँ? श्री सिद्धि कुँअरिजी भी विरोध करवाने ही में तुली हैं, हमको भी राम कहती हैं और इनको भी । प्रिये ! हम और आप, राम सीता से अतिरक्त कुछ नहीं हैं, यह ज्ञान आपका अखण्ड है या नहीं ?

अभिनय किशोरी : प्यारे ! वास्तविक सीता-राम हम लोग ही हैं, इस ज्ञान का सूर्य एक रस मेरे हृदय-गगन में प्रकाशित हो रहा है।

[चित्राजी सबको तदाकार-वृत्ति के वृहत आकाश में स्थित जानकर प्रकृति-प्रदेश में ले आने का प्रयत्न करती हैं।]

चित्राजी : राम-रूप-रसिके ! आप श्री अपने ननद-ननदोई के विवाह की अनुकरण-लीला में तदाकार होकर अनुकरण-स्वरूपों को वास्तविक-सीता-राम के विग्रह समझ रही हैं। आपकी इस अभिन्न दर्शनात्मिका अद्वैत रूपिणी विशद बुद्धि की जय हो, जय हो।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तो क्या तुम द्वैत का चित्र-चित्रण करना चाहती हो। अरे ...अरे ! असंभव को संभव करने का प्रयत्न क्यों कर रही हो ? अद्वैत के पवित्र-आसन पर द्वैत के दैत्य को क्यों आसीन कर रही हो ?

चित्राजी : नही, नहीं... स्वामिनीजू ! अद्वैत की स्वर्ण-शिला में राम और सीता के एक ही चित्र का चमत्कार-पूर्ण-दर्शन पाने के लिये बहुत से चित्रों के मिटा देने का प्रयास कर रही हूँ। आपकी अनुपम जिह्वा जो नित्य अमृत-फल का आस्वाद ग्रहण करती है उस पर बन के तीखे, कसैले और कटु-फलों को आपकी किंकरी स्वप्न में भी रखना नहीं चाहती।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम्हें मस्तिष्क की अस्वस्थता ने धर दबाया है क्या ? पागलों जैसी बातें कर रही हो। मालुम होता है, तुम्हें दृष्टि-दोष हो गया है, जिसके कारण अद्वैत की भीति पर एक-चित्र के अतिरिक्त और-और चित्रों का दर्शन तुमको हो रहा है। अरे ! राम ...राम ! मेरी सहचरी को दर्शन की अप्रक्रिया के कारण ही एक चन्द्र लोक में दो चन्द्रों का दर्शन हो रहा है।

चित्राजी : दिव्य-नेत्रे ! देखिये ... ये राम और सीता कोहवर-क्रिया करके आसन में आसीन हैं और ये राम और सीता इन स्वरूपों के सम्मुख खड़े हुये हैं यदि ये इनके प्रतिबिम्ब होते तो ये भी इनकी तरह बैठे हुये कोहवर-क्रिया करते कि नहीं ?

श्री सिद्धिजी : (दोनों ओर पृथक-पृथक मुद्रा में बैठे और खड़े हुये राम और सीता को देखकर आश्चर्य मुद्रा से) हैं ! यह क्या देख रही हूँ ? चित्रे ! यह स्वप्न है कि सत्य है ? अरे, अरे ! स्वप्न में भी मुझे दो राम और दो सीता सह्य नहीं। हाय ! हाय ! मेरी आँखें ये क्या देख रही हैं? हाय ! दो राम और दो सीता का अस्तितव मन में आना द्वैत के पंक में फंस जाना है। हाय ! कष्ट ! महाकष्ट !!

[सिद्धिजी , विकलता के कारण उन्मादिनी सी हो रही हैं, उन्हें लग रहा है कि भू-संचालन तो नहीं हो रहा है, वसुधा विदीर्ण तो नहीं हो रही है। हाय ! कहकर स्मृति-शून्य हो जाती हैं तथा पृथ्वी में गिर जाती हैं। चित्राजी उन्हें ज्यों की त्यों सखियों की सुरक्षा में पड़े रहने देती हैं। और स्वयं श्री रामजी के संदेह और भ्रम को दूर करने के साधन में जुटकर रामजी से कहती हैं।]

चित्राजी : मेरे प्रियतम ! यदि मैं आप श्री के संशय और संभ्रम को सर्वथा सुदूर करके एक दाशरथि राम का अस्तित्व आप श्री के सम्मुख समुपस्थित कर दूँ तो हृष्टमना होकर आप मुझे कौन सा देय देंगे ?

श्रीरामजी : हे हृदय हर्षिणी चित्राजी ! मैंने आपको क्या नहीं दिया है ? जो जो अवशेष हो वह-वह सब देने के लिये तत्काल तैयार हूँ। आप हम दोनों के चित्त की चंचलता को अपनी चातुर्य-कला से दूर कर देंगी तो हम आपका बड़ा उपकार मानेंगे।

चित्राजी : (साश्रु) श्याम सुन्दर !आपने मुझे अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया है, कुछ भी अपने समीप शेष नहीं रखा। आपका अनुत्साह एवं अनुताप मुझ से देखा नहीं जाता अतएव कुँअर-कान्ता को प्रकृतिस्थ करने के प्रथम आप श्री को स्वस्थ करने का समुचित साधन शीघ्रतिशीघ्र कर रही हूँ। आप चिन्ता न करके, मेरी प्राथमिक-चिकित्सा के चमत्कार पूर्ण परिणाम का संदर्शन करें।

श्रीरामजी : चित्राजी बड़ी कृपा होगी आपकी यदि मुझे स्वस्थता का संदर्शन करा दें। स्वतन्त्र होते हुये भी आपका अनुगामी परतन्त्रता की पोशाक पहनकर सुशोभित होगा।

चित्राजी : (प्रेम से प्रियतम राम का स्पर्श करके) प्यारे आपकी अनुगामिनी है यह किंकरी। आप श्री के मुखाम्भोज को विकसित करने का कैंकर्य करके अपना परम सौभाग्य समझेगी यह।। आप युगल-मूर्ति इस आसन में आसीन होकर यहाँ अपनी सरहज की अचेतन-दशा का दर्शन, कृपा दृष्टि का निक्षेप कर-करके करते रहेंगे। मैं किंचित काल में आ रही हूँ।

[चित्राजी लीला स्वरूप के कर पकड़ करके मृदुल वाणी से बोली.]

चित्राजी : प्यारे ! चलें... आपको विश्राम-कुंज में ले चलें, ठीक है न ? वहाँ एक आपका ही अस्तित्व रहेगा, यहाँ आपके प्रतिपक्षी ये राम खड़े हैं। मुझे आपको स्वस्थ करने की चिन्ता हो गई है।

लीला-स्वरूप-श्रीरामजी : अच्छा ! चित्राजी ... चलें यहाँ से, वाद-विवाद से मस्तिष्क का रोग क्यों मोल लें।

चित्राजीः चलें, प्यारे चलें।

[चित्राजी लीला-स्वरूपों को लेकर विश्राम-कुंज में पहुँचती हैं और वहाँ उनके वस्त्रा-भूषण उतारकर सहज-वस्त्र पहना देती हैं।]

लीला-स्वरूप श्रीरामजी : चित्राजी ! हमें नींद आ रही है।

चित्राजी : प्यारे ! पलँग बिछा है, आपके लेटने की देरी है

[लीला-स्वरूप श्रीरामजी व सीताजी सो जाते हैं, चित्राजी श्री सिद्धि कुँअरिजी के पास आती हैं]

चित्राजी : (श्री सिद्धि कुँअरि जी को उपचार द्वारा उठाकर) स्वामिनीजू ! देखिये तो सही, अब आपके समक्ष एक राम और एक सीता ही सिंहासन में पधारे हुये है।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! दूसरे राम कहाँ गये जो मणियों का मौर मस्तक पर धारण किये थे ?

चित्राजी : आज आप श्री अपनी दो सखियों को श्री रामजी व श्री किशोरी जी के स्वरूप बनाकर उनके विवाह की अनुकरण लीला कर रही थीं जिसे देखने के लिये आपके वास्तविक नँनद-ननदोई भी पधारे थे और अब भी आपके सामने विराजमान हैं किन्तु आपकी अचेतन अवस्था का दृश्य देखकर लीला-स्वरूप वेष-परिवर्तन कर सखी-स्वरूप में अपने निज की शैया में सोये हैं।

श्री सिद्धिजी : अरी आली ! तो ये अनुकरण-लीला के स्वरूप थे?

चित्राजी : हाँ, हाँ, लीला-स्वरूप थे, लीला-प्रिये ! आप श्री ने ही अपनी सखियों को श्री सीताराम के सुन्दर स्वरूप बनाकर व्याह-लीला करना प्रारम्भ किया था। राम आर सीता में तदाकार बुद्धि वाले स्वरूपों का आवेश उतर जाने के कारण उनकी स्मृति अब सखी-स्वरूप में स्थित हो गई है। आप भी अब प्रकृतिस्थ होकर हम लोगों को अपनी दैनन्दिनी-लीला के द्वारा आनन्द प्रदान करें।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! सचमुच सखियों के द्वारा श्री किशोरी जी के ब्याह की अनुकरण-लीला हो रही थी ?

चित्रा जी : जी हाँ स्वामिनी जू ! अनुकरण लीला हो रही थी।

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ होकर) हाय ! तभी तो मुझे दो राम और दो सीता के होने के भ्रम ने विषाद के वन में भ्रमण करा दिया था। सहेली ! हाय ! उस द्वैत के दर्शन का दुख स्रष्टा की सृष्टि में सबको अप्राप्त रहे यही मेरे मन का मनोरथ हैं।

चित्राजी : अकेली आप श्री ही नहीं प्रत्युत श्री किशोरीजी सहित श्रीराम जी तथा लीला-स्वरूप भी द्वैत के कीचड़ में फंसकर एक दूसरे को न सहते हुये स्पर्धा एवं अनुत्साह का आलिंगन कर रहे थे। आपको दिङ्मात्र संकेत कर दिया है मैंने, आप स्वयं अच्छी गवेषिका हैं अस्तु आज की दशा का गम्भीर ज्ञान आपके ज्ञान की आँखों से अदृश्य नहीं रह सकता।

श्री सिद्धिजी : हाय ! तब तो हमारे प्राण-प्रिय आँखों के अतिथि को कठोर कष्ट का अनुभव करना पड़ा होगा ?

[दहाड़ मारकर रोने लगती हैं, लगता है प्राण खिंचे से जा रहे हैं, चित्राजी धैर्य धारण कराकर बोली ....]

चित्राजी : अवश्य ही आपके नँनद-ननदोई को द्वैत का दर्शन करके अत्यधिक दुःख का आघात सहना पड़ा था किन्तु अब तो वे पूर्णतया स्वस्थ व सुखी हैं।

श्री सिद्धिजी : (श्री रामजी के समीप जाकर प्रणाम करके प्यार से स्पर्श करती हुई) हाय ! आज क्या करने चली और क्या हो गया ? अपने प्राण-प्रियतम को सुख पहुँचाने का संविधान का आयोजन मैंने किया किन्तु प्यारे को उलटे दुःख का ही दर्शन कराने की कारण बनी।

[प्रेमाश्रु चुआती हुई पैरों में लिपट जाती हैं, श्री रामजी प्रेम भरे नयनों से दृष्टि पात करते हुए प्यार से उन्हें उठाकर प्रसन्न-मुद्रा मे बोले ....]

श्रीरामजी : कुँअर-कान्ते ! आज का आयोजन आपका अत्युत्तम रहा जिसके वैशिष्ट्य और वैलक्षण्य ने सबको तदाकार-वृत्ति के केन्द्र में केन्द्रित कर दिया। अहो! आप भी अनिर्वचनीय आनन्द के अनुभव में मग्न होकर अपने को सम्हाल न सकीं। हाय ! हम लोग तो आकस्मिक विचार-धारा में बहकर बुरी तरह से अपने अस्तित्व में सन्देह और भ्रम कर चुके थे किन्तु चित्राजी की चतुरता ने हमारे संशय और शोक का सर्वथा शमन कर, हमको स्वरूप में स्थित कर दिया। धन्य है चित्राजी के चातुर्य को अस्तु , हमारे हृदय ने कृतज्ञता प्रकट करते हुये चित्राजी को अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! अवश्यमेव, चित्रा की चातुरी ने चमत्कार पूर्ण कार्य करके संशय के राहु से ग्रस्त सबके आत्म-सूर्य को स्वस्थ और सुखी कर दिया। आपकी अनुकम्पा से सहेली की तपश्चर्या निखिल-सृष्टि के स्वामी को प्रसन्न करने के लिये पर्याप्त रही। धन्य है चित्रा के विचित्र और विशिष्ट सौभाग्य को।

श्रीरामजी : (हँसकर) वाह ! आज कुँअर-कान्ता की नाट्य-कला ने अपने नयनाभिराम नटवर के मन को नर्तन-क्रिया करा करके ही छोड़ा ।